।। श्री सद्गुरु प्रसन्न ।।

संरक्षक

परमपूज्य सद्गुरु वासुदेव रामेश्वरजी तिवारी

संपादक मण्डल

श्री प्रकाश मिश्रा, दुर्ग

श्री राजू काण्णव, वर्धा

संपादकीय सलाहकार :– देवेन्द्र सिंह राय, भोपाल

उद्बोधन 2016

अनुक्रमणिका

क्र0	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	अनुरोध	1
2.	शरणागति एवं जीवन मुक्ति का उपाय	2
3.	इच्छा	3
4.	खुद मेहनत करो	3
5.	निर्मल के बलराम	4
6.	गुरुजी की पद्धति	4
7.	तीसरी आंख	5
8.	कर्तव्य	21
9.	श्री गुरु महाराज अष्टोत्तर–शत नाम–माला	23
10.	श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार साधना प्रक्रिया	25
11	पूज्य गुरुजी की कुछ स्मृतियां एवं अनोखी कृपा	29
12.	शिष्यानुभव	31
13.	गुरुजी का आशीष	32
14	परम पूज्य गुरुजी	34
15.	कुण्डलिनी जागरण	37
16	श्री रामचरित मानस में गुरु तत्व का प्रतिपादन	45
17	परम पूज्य श्री गुरुजी का अंतिम प्रवासः "रायपुर"	50
18.	Importance of Focused Single Approach to Meditation	54
19.	Discipline In Serenity	56
20.	आंकडा	61

अनुरोध....

प्रिय गुरु बंधु / बहन,

23 जुलाई को प्रति वर्ष होने वाले गुरु पर्व पर आप सबका हार्दिक अभिनन्दन एवं प्रणाम। यह पर्व इसलिए प्रारंभ से ही विशेष महत्व का है क्योंकि इसी दिन पूज्य गुरूदेव ने हम सबका उद्धार करने के लिए मानव शरीर धारण किया था। भले ही कुछ लोग इसे संयोग मानें, परन्तु क्या यह हम सबका प्रारब्ध नहीं था कि भारतवर्ष से हजारों किलोमीटर दूर एक दिव्यात्मा ने जन्म लिया, हम सबका उनसे सम्पर्क हुआ और हमारी जीवन दिशा बदल गई। हम सब ऐसे मार्ग पर चल पड़े, अपने आपको जानने के, जिसके संबंध में बहुत कम लोग, कुछ करना तो दूर, सोच भी सकते हैं। इस वर्ष आश्रम में काफी निर्माण हुआ है। पूरे आश्रम प्रांगण में पेवर ब्लाक भी लग चुके हैं। आशा है कि आश्रम के मुख्य द्वार का भव्य निर्माण भी शीघ्र ही प्रारंम्भ होगा। सहयोगकर्ता सदस्यों का समस्त गुरू परिवार हार्दिक आभारी है।

गत वर्ष पर्दापण दिवस 6 अक्टूबर को, दो दिनों के लिए, दुर्ग में भव्यता से मनाया गया । बड़ी संख्या में गुरूपरिवारजन आये थे और अनुशासन पूर्ण वातावरण में पूरे समय साधना हुई एवं अनुभव बताये गये। सभी प्रकार की व्यवस्थाएं आयोजकों ने रूचिपूर्वक एवं सुचारू रूप से की थीं। इस वर्ष तेल्हारा, जिला अकोला, महाराष्ट्र, जहां गुरूजी ने 40 वर्ष बिताये, यह पर्व मनाने का विचार है। आप सभी से अनुरोध है कि सूचना मिलने पर अधिक से अधिक संख्या में पधारें।

इस अंक में हमने पुरानी पत्रिकाओं में छपे हुये कुछ लेख भी दिये गये हैं । नये सदस्यों को ज़रूर इनसे लाभ मिलेगा। गुरुजी की आध्यात्मिक एवं भौतिक कृपा का अनुभव सभी परिवार जनों को लगातार होता रहता है। उद्बोधन ही वह माध्यम है जिससे हम इन अनुभवों को अभिलिखित कर सुरक्षित कर सकते हैं एवं सभी सदस्यों की जानकारी में ला सकते हैं। अतः आपसे हमेशा की तरह अनुरोध है कि पत्रिका के लिये लेख / अनुभव / फोटो अवश्य भेजें। इस वर्ष गुरुपरिवार के वरिष्ठ सदस्य रायपुर निवासी डॉ आर.पी. पाण्डे एवं उनकी धर्मपत्नि तथा भोपाल निवासी श्री दिलीप मराठे का देहावसान हो गया है। उनके संबंध में आगे पत्रिका में भी उल्लेख है। गुरूपरिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये हम गुरुजी से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें अपने चरणों में स्थान दें। पत्रिका के प्रकाशन में श्री प्रकाश मिश्रा दुर्ग, श्री राजू काण्णव वर्धा एवं कृष्णा प्रिंटिंग होम, भोपाल के श्री कृष्णा अग्रवाल का विशेष योगदान रहा है। हम उनके आभारी हैं।

पूज्य गुरुजी का आशीर्वाद बना रहे और हम सब साधनापथ पर चलते हुए गुरूजी के आदेशों का पालन कर सकें, गुरूजी से इसी प्रार्थना के साथ,

आपका,

डी. एस. राय

शरणागति एवं जीवन मुक्ति का उपाय

सत् पुरूष से पाने के लिए भजन पूजन यज्ञ करते हैं यही आत्म यज्ञ है। जब तक आप अपने आप को समर्पित नहीं कर देंगे तब तक मैं का पलड़ा छूटता नहीं हैं और जब तक मैं करता हूँ ये रहता हैं तब तक कुछ भी नहीं मिलता। कर्म कर के सो जाइये, बोलो कि मुझे समझाइये, मुझे शक्ति दीजिये, कैसा करना, कैसा नहीं करना। आप ही तो सब कुछ हैं, जीवन के आधार हैं। मन में रखना कि ये सब गुरूजी का है, हम तो भाई एक सेवक हैं। एक बार भार डाल दिया, उस पर तो डाल दिया, फिर लेना देना उसका काम है जिसको आप मानते हैं। उनसे बराबर होता है । अपना काम सिर्फ भरोसा करना है। जो कुछ बाकी सब तुम्हारा है, मेरा कुछ नहीं हैं, सौंप दिया है तो तुम्हारा काम है करने का। तुम्हीं करोगे और तुम्हीं सब कुछ हो, ऐसा बोझ उस पर डाल कर के दृढ़ निश्चय, विश्वास, भरोसा और पूर्ण श्रद्धा के साथ बैठना है। बच्चे को बगैर रोए माँ दूध नहीं पिलाती आप लोग बोलते हैं किन्तु गुरूजी के सामने रोते क्यों नहीं अँधेरे में रात में और सो जाना कुछ दिनों के बाद आपका सब काम हो जायेगा। उठते समय प्रमाण करना, कहना आपने मुझे उठाया है, मैं चला, लाभ हानि तुम जानो, ये बोल कर अपने काम में लग जाना तू जान तेरा करोबार जाने, मैं नहीं जानता। जैसा बताया खाली वैसा करों, जरूरत पड़े तो वहीं अंधेरे में अकेले में झगड़ा करों। आपका ये लोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाता है। आपके जीवन में परिवर्तन हो जायेगा। आचरण में, भाषा में, कृति में परिवर्तन आ जायेगा। माने संसार में रह कर सब सुख दुःख भोगते हुए जैसा बताया गया है वैसा करिये।

जिसका मन बुद्धि अनन्य भाव से माने एक भाव से हो गई है, बस यही भगवान हैं, इनसे मेरा सब काम हो रहा है और मेरा कोई नहीं है, ऐसी धारणा होनी चाहिए। सेवा क्या है ?आप अपने आप को अर्पण कर दिए और जो कुछ चाहिए बोलिये। वो सब कुछ देता है गुरू के चरण में लिपट रहना, सोते समय वहीं ताकिया बनाओं और सो जाओं । जागे तो तकिया में सोये तो तकिया में और जो कुछ बोलना है, हठ कर के बोलिये। जिस दिन वो निर्भर हो गया, संसार के प्रपंच, से दुखःसुख से, पुनर्जन्म से तत्काल वो मुक्त हो गया। गुरूजी के आदेशानुसार कर्त्तव्य पालन में लग गए। बाकी समय गुरूजी को मन दे दिया, अपना कोई विचार नहीं, कोई तन नहीं, कोई मन नहीं, कोई धन नहीं और कोई काम नहीं ।अपना कुछ नहीं है, बस गुरूजी के चरणों में बिछे रहना है। गुरूजी को जानते हैं, पहचानते हैं और आपकों विश्वास है तो सब जगह आनंद है। कोई भी व्यक्ति हो सीधा हो कर रह जाता है साँप भी आ जाये तो सीधा हो कर रह जाये ।आपने शरण ले लिया अर्थात् तन मन धन तीनों समर्पित हो गए इसी का नाम शरण है। ये सब गुरूजी का कारोबार है, सारा संसार गुरूजी का है और हमारा संसार भी गुरूजी का है। हम तो उनके आदेश का पालन करते हैं। फिर जीवन यापन के अंदर ना राग रहेगा, न द्वेष रहेगा, ना काम रहेगा, ना क्रोध रहेगा, न लोभ रहेगा, ना मोह रहेगा, केवल भोग मात्र रह जाएगा। गुरूजी का आदेश है, प्रपंच छोड़ना नहीं है, प्रपंच भी चाहिए और आत्मानुभूति भी चाहिए। पूरी तरह से समर्पण नहीं होने पर अहंकार बहुत दबायेगा और अपना ही नाश कर जाता है। मेरा क्या है सब तेरा है ये तेरा में ही भारी रहस्य है । कुछ नहीं होता है तो उनका काम है, सब उन्हीं का है, ऐसा समझ कर चलिए। कामिनी कांचन में रह कर के यह ध्यान में रहना चाहिए जो आपको बताया गया है।

इच्छा

1. गुरू आज्ञापालन, शास्त्र का अध्ययन, असत् सत् का विचार करना विवेक है।
2. जीव ब्रम्ह है समझना, संसार से मन हटाकर बलस्थ होना वैराग्य है। वैराग्य होने पर चित निर्मल, क्षमा, सरलता, पवित्रता, प्रिय, अप्रिय, प्राप्ति में समता, समस्त इच्छाओं का अभाव। स्मरण मात्र से किसी का भी काम बन जाये चाहे वह शिष्य हो या न हो, ऐसा सद्गुरू, सत्पुरूष होना चाहिये।
3. सबकी बुद्धि, चित्त, मन स्थिर हैं, न होता तो हम सब पागल खाना में होते, लेकिन जीविका, अपने आप को, तत्व को जानने के लिये समय नहीं है, उपजीविका के पीछे फिर रहे है, यही भोग है।
4. केवल दासी के समान मन, भाव रहना चाहिये, सब कार्य करती है, किसी को अपना नहीं कहती है, चिंताओं और दुखों का रूक जाना ही, उन पर पूर्ण निर्भर रहने का सच्च स्वरूप है।
5. जाओं शरीर से कहीं भी, रहो मन से मेरे पास, आते रहो, मेरे स्वरूप का हृदय में ध्यान धरो, सारथी बनकर सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा।
6. गुरू प्रसाद से दिव्य शक्ति कुण्डलिनी ज बवह भ्रुर्वोमध्य में खड़ी हो जाती है, तब सम्पूर्ण ब्रम्हांड प्रकाशमान हो जाता है।
7. इच्छा ही स्त्री है इच्छा है इसलिये आप भोगे जाते है, लोग आपसे कामना करते हैं, जगे कि निर्भय हुए, आप में पुरूषत्व आ गया, ब्रम्ह हो गए। इच्छा कम करो काम, क्रोध, लोभ, मोह सब भाग जायेंगे।
8. जिसमें जितना देह भाव है, वह उतना परावलम्बी, डरपोक और आलसी होता है, जब तक दृढ़ धारणा नहीं होती देह भाव जा नहीं सकता, देह भाव गए बिना आत्मानन्द प्राप्त नहीं हो सकता।
9. मैंने जो बीज बोया है, बिल्कुल निष्फल नहीं है, और नही ंतो, मरते समय आप ज्योति में जायेंगे, क्योंकि हमने ज्योति का, आत्म ज्योति का बीज बोया है जो पूर्ण है उसका टुकड़ा होता नहीं हे। वह तो अखण्ड है, हम ही है सब जगह।

खुद मेहनत करो

हम ऐसे कामिनी कांचन के पीछे पड़े हुए है कि उसी के लिए हम प्राण भी देते हैं और लोगों के प्राण भी लेते हैं। आहुति जैसे कामिनी कांचन में बलि चढ़ा देते हैं। वैसे ही अपने आप को जानने के लिए बलि चढ़ा देना चाहिये बलिहारी हो, बधाई हो, न्योछावर हो। अपने आप को बढ़िया समझो न धर्मात्मा समझो, पुण्यात्मा समझो, वो सब जगह है, तो हमारें में भी है, तो हम घटिया समझे, क्यों अपने आप को, सबका भला करते हुए सबके सहायक बने रहे।

सर्वे भवन्तु सुखिन : सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।

ऐसी प्यास दो महासागर, प्यास, पीते जाओं, पीते जाओं, वो कभी न बुझे अैर कभी न बुझने का है, और अगर प्यास बुझ गई, तो वो प्यासा भी नहीं, यानि और प्यास बढ़े। इसलिए जिसका मन, बुद्धि उस परमात्मा पर, परम् सागर पर, महासागर में लीन है, क्या कहना पड़ता हैः मस्त रहते हैं

जहाँ मस्ती है, मस्तानों की, ये है बाजार।
अरे बाबा जैसे हम है, वैसे आप है, वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है, जो करेगा सो भरेगा।
आपकी रचना ही ऐसी है, इसमें सब भरा है, रत्नों का भण्डार है, जो पहचानता है ऐसे कोई पारखी मिल जाये और बता दे ये रत्न ऐसा ऐसा है, बस तो हम सुनने को भी तैयार नहीं, मनन करने को भी तैयार नहीं, हमको तो खोज के तुम दे दो मैं मजा करू। हमको कुछ नहीं करना है, हमकों तो आप दे दो, आप दे दो। ईश्वर की ऐसा इच्छा है कि सबको कंगाल रखे, ईश्वर की ऐसी इच्छा है की सबको दे।

कुछ दुःख दिया तो ईश्वर ने दिया, बन गया तो मैंने किया। बिगड़ गया तो ईश्वर ने किया।दे बत्ती, ईश्वर कितना गरीब है, दे बत्ती। जब ईश्वर इतना गरीब है, हम ईश्वर के अनुयायी होते हैं, अपना भी काम यही होना चाहिये, अपने को ही आना चाहिये।

अपमान सहन करने के लिये तो हम जग में आये हैं, ये बहुत दिनों के बाद समझ में आता है। आचारण में, याने अनुभव में तो नहीं, समझ में आता हैं, और समझ के वैसा रहना हो जाये, तो क्या कहना पड़ता है, आनंद सत्‌चिदानन्द, आनंद सत्‌चिदानन्द।

निर्मल के बलराम

प्रत्यक्षानुभूति होने पर मनुष्य धर्म अधर्म आदि सभी प्रकार के द्वन्द्वों से परे चला जाता है, आत्म तत्व जानने के लिए ऐसो के पास ही जाना चाहिये।

निष्काम व्यक्ति ही आत्मा का दर्शन करते है, उन्हें शाश्वत शांति मिलती है, हमारे भीतर जीवात्मा और परमात्मा दोनों है, जीवात्मा छाया है, नकली है, और परमात्मा स्वरूप यथार्थ।
मन का संयम करो, इन्द्रिय निरोध करो, देखना, सुनना आदि इन्द्रिय व्यापार बन्द करो, अज्ञात रूप से तुम करते भी हो ज्ञात रूप से भी देह की सहायता से अभ्यास करो। तुम घर बैठो और अन्तः के भीतर ही उपनिषदों के तत्वों की खोज करो, तुम सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ ग्रन्थ हो। जब तक उस अंतर्यामी गुरू का प्रकाश नहीं होता, बाह्य उपदेश व्यर्थ है। हमारी इच्छा शक्ति ही यथार्थ नियन्ता है, वह सदा हमें विधि निषेध बताती है, वह कहती है, अमुक कार्य करो, अमुक नहीं, यही इच्छा शक्ति हमारी मोक्षदा है। अज्ञ के लिये बंधक विज्ञ के लिये मुक्तिदा। सभी प्रकार के इच्छा शक्ति को प्रणाली बद्ध योग से दृढ़ किया जाना चाहिये, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग, ज्ञान योग के द्वारा निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

गुरूजी की पद्धति

आत्मसाक्षात्कार विषय हेतु जो अभ्यास किया जाता है, उस अभ्यास की सीमा है, वह सीमा है – प्रथम चक्र, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं षष्टम चक्र, यहाँ तक अभ्यास किया जाता है। हमारी पद्धति में हमने साधक को षष्टम भूमिका में रख दिया, इससे क्या होता है कि जो षष्टम चक्र से निम्न चक्र है, उन चक्रों के परिणाम साधक के मनोबुद्धि, मनोवृत्ति पर प्रभाव नहीं डालते, वह साधक जेट विमान की तरह सीधे निकल जाता है, हजारों मील प्रति सेकंड की गति से षष्टम चक्र

में पहुँचने के बाद हम अभ्यास को बन्द करा देते हैं। अब निम्न चक्र जो है, उसमे साधक का आना जाना होता है, आने जाने से इन चक्रों की जो शक्तियाँ है, उनसे वह साधन धीरे धीरे शक्ति सम्पन्न होता चला जाता है, अपने आप उसे सब मिलता जाता है।

ये शक्तियाँ अब आपके अराउंड घूमेगी और तुम्हारा कार्य करेगी। जो कार्य तुम्हे करना है, नहीं बन रहा है, बिगाड़ हो रहा है, यदि केवल संकल्प करोग, माने मन में रहना है, बताया नहीं जाता, वह धीरे से अपने आप हो जाता है। सभी काम ऐसे ही बन जाते हैं, इसलिए साधक को कोई चिंता नहीं रह जाती है। अहम यदि आ गया साधक में तो वह समाप्त हो गया, गिरता चला जायेगा दिनों दिन, जब तक पुण्य है। ये अहम भोगवाता है अनेक जन्म में जाता है। जन्म से लेकर सिद्धावस्था तक भोगना पड़ता है, जब तक एक भी संस्कार बाकी है, उसे जन्म लेना पड़ेगा भोगने के लिए। वासनाओं का बीज अहम है, पुण्य पाप के बीज वासना है, अहम भाव जब समाप्त होता है, तब निर्बीज समाधि होती है, यह निर्वाण है, वान माने शरीर, उसका शरीर ज्योर्तमय शरीर होता हैं। आत्मा ही तो तुम हो, आत्मा से ही सब कार्य हो रहा है, खाली अपना कचरा साफ करना है, साफ होने के बाद आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवति।

तीसरी आंख

वैज्ञानिक जिसे मस्तिष्क या ब्रेन कहते है, वहीं कल्पतरू है। आत्मा की जो ज्योति दिखती है, वह कहाँ है? आपने किसी बच्चे का तालु देखा होगा, उसके नीचे एक ग्रंथि है वही है, तीसरी आँख। साधना से आत्मा इसी तीसरी आँख में पहुँचती है तो तालू बन्द हो जाता है, तीसरी आंख के भीतर दिखलाई पड़ती है। इस तीसरी आँख या आज्ञा चक्र को गोलोक, बैकुंठ, शक्तिपीठ, कैलाश, साकेत या निराम्बुज कहा गया है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य सदा के लिए निर्मल हो जाता है, मलरहित हो जाता है। अपिवित्रता विनिष्ट होकर पवित्रता प्रविष्ट हो जाता है, इसे ही गुरूनेत्र या गुरूचक्र, पुण्डरीकांक्ष कहा गया। ये शुचि ही पवित्र होना है, तभी व्यक्ति आत्मस्थ होता है, स्थिरता प्राप्त करता है। यह आज्ञाचक्र चुम्बक की तरह लटकता है, पीनियल बॉडी या ग्लैंड पर आत्म ज्योति का फोकस होता है, उस फोकस में दिव्य प्रकाश में साधक भीतर ही भीतर देखने लगता है। इस प्रकाश की ज्योति में मनुष्य आंतरिक एवं बाह्य परिवर्तनों को, घटना क्रमों को देखता है साक्षी भाव से। इसे पचाना है, आत्मसात करना है। अंदर बाहर, अंदर बाहर बने रहो। विभक्त नहीं होना है, जो विभक्त है वो भक्त कैसा, ऋण कैसे चुकेगा समाज का ?

इस मार्ग में आने पर भोग समाप्त होने पर, शरीर जब पार्थिव होता है, तो साधक दिव्य मार्ग या ज्योति मार्ग से जायेंगे, आकाश/अग्नि/विद्युत/इंद्रलोक/प्रजापति फिर सत्य लोक से होकर जायेंगे। लेकिन ये एक दो दिनों की बात नहीं है, हजारों साल की प्रक्रिया है, इतने लोकों में घूमते अपना कर्त्तव्य करते, ऋण चुकाते, लोग करते निकलते चले जाते हैं, ये ही सिद्ध है। अन्यथा यमदूत आयेंगे यमलोक में ले जाकर विभिन्न प्रकार की योनियों में भेज देते हैं। जिनकी सुषुम्ना खुल गई है, वह जानिए कि वैतरणी तर गए, उसकी तीन पीढ़ी तर गई, चौथी पीढ़ी आने पर पुनः वहीं ही हो जाता है। इसे ही आदि नाड़ी, मध्य नाड़ी, अन्त्य नाड़ी कहा गया। ज्योतिष इन बातों को समझ कर कार्य करें तो उनका कथन ब्रम्हवाक्य होगा। ज्योतिष का तात्पर्य है, ज्योति का इष्ट होना।

सतगुरू प्रसन्नता

आत्म ज्ञान हेतु सर्वे सिद्धि का मूल मन्त्र श्री सतगुरू की प्रसन्नता है। जैसे कोई कलाकार अपने शिष्य की कला पूर्ण होने पर वाह, वाह कहके पीठ ठोकता है, वैसे ही सतगुरू से प्राप्त शक्ति से शिष्य पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है, वह गुरू में मिलकर गुरू रूप हो जाता है, तो उनको प्रसन्नता होती है। धन दिया, वस्त्र दिया, खिलाया, पिलाया, स्तुति की, सेवा किया, ये सब ठीक है, असल सेवा पूर्णत्व प्राप्त करने पर उनकी होती है।

शीघ्र प्राप्ति हेतु कुछ उपाय प्रयोग हेतु मननीय है –

1. गुरू आज्ञा पालन ही तप है, गुरू आज्ञा पालन ही ध्यान है, साधना है, परम् कर्त्तव्य है, इससे बढ़कर कोई मंगलमय कर्म शिष्यों के लिए नहीं है।
2. शिष्य को गुरू आज्ञा पालन करते हुए साधना अर्थात् ध्यान का श्रद्धा से, पूर्ण प्रेम से, उत्साह से, सम्मान से, सत्कार से, अनुष्ठान करते रहना चाहिए।
3. ध्यान से कुछ प्राप्त होने पर, सांसारिक विपदा आने पर प्रार्थना की पूर्ति न होने पर शिष्य दूसरी ओर देखने लगता है, दूसरों से आशा करने लगता है, सतगुरू के सर्वशक्तिमान होने पर शंका, संशय, उत्पन्न होने लगता हैं, यही परीक्षा का समय होता है। जिस प्रकार पुत्र किसी भी परिस्थिति में अपने पिता के अलावा किसी से आशा नहीं कर सकता, यह स्थिति आ जानी चाहिये।
4. दीक्षा से सतगुरू की महाशक्ति शरीर के अंदर शुद्धि का कार्य करने लगती है, अतः अपनी योग्यता समझकर ऐसी दिनचर्या रखनी चाहिये कि कुसंगति से बचते हुए श्रेष्ठ भावना बनी रहे और हममे गुरूजी का आचरण उतरे।
5. सतगुरू के उपदेशों को, सिखाई हुई सीख को, बताये हुए मार्ग को, उनकी अवहेलना न करते हुए, श्रद्धा और प्रेम को बढ़ाते हुए हृदय में धारण करना चाहिए।
   जिस प्रकार एक विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिये लगन से, रात दिन जागकर, परिश्रम कर, सब कुछ त्याग कर, एक निष्ठ होकर, प्रावीण्य सूची में स्थान बना लेता है, ऐसी ही तैयारी करते रहने पर गुरूजी की प्रसन्नता प्राप्त होती है।
6. सतगुरू के रंग में इतना रंग जायें कि उस पर कोई रंग न चढ़े, जिसको न राग में राम, न द्वेष में द्वेष। मन ही मन, तन, मन, धन, जन, अहम, मान सम्मान, जीवन मरण, जीवकोपार्जन का साधन, सर्वस्व समर्पण कर देता है और किसी भी परिस्थिति में उनकी मर्जी से हो रहा है, देखता है वह सतगुरू की प्रसन्नता का पात्र बनता है।
7. बगुले का ध्यान पेट भरने के लिये होता है, ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए।
8. शिष्य को जब संसार की निस्सारता समझ में आने से, आत्म रस में आनंदित होकर, विश्व मं सबमे आत्मा को देखने लगता है, भीतर बाहर वहीं दिखने से अद्धत रस से भर जाता है, तो गुरू की प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है।
9. कैसे भी इस कार्य हेतु शिष्य समय निकालकर लगा रहता है, तब वो प्रसन्न हो जाते हैं अत :–
   श्री गुरूं शरणं गच्छामि, श्री ध्यान योग शरणं गच्छामि, श्री गुरू भक्ति प्रेम प्राप्नोमि।

परस्पर देवो भव इति धारणाम् धार्यामि, सततं श्री गुरूं स्मराणि, मम मतिः श्री गुरूः मम रतिः श्री गुरूः, ममात्मा श्री गुरूः। यह भाव बने रहने से और करने से सतगुरू की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(मुक्तानन्दजी की वाणी का संकलन)

छठी भूमिका

मोह से दूर होने का मतलब यह नहीं की सब कुछ छोड़कर भाग जाये, यह सम्पूर्ण परिवार, समाज, देश, जाति, विश्व, यही ब्रम्हवन है, इसी में साधना करनी है, पलायनवादी की तरह भागना नहीं है। मत कहिये की ये मेरा पुत्र, पत्नी, भाई, बन्धु, जितने भी नाते रिश्ते है, ये मेरे नहीं है, इनके साथ व्यवहार की भूमिका जो इस तन में मिली है, उसका निर्वाह तो करना ही, बिना निर्वाह के निवृत्ति कैसे होगी। लाभ हानि पर ध्यान न देकर उसे बराबर करके, बराबर समझकर, निरपेक्ष भाव से कर्त्तव्य करिये, जगत में रहना है, घर में रहना है, नहीं रहकर भी रहना है, न कोई स्त्री है न पुरूष है, न बेटा है, न बेटी है, सब आत्माये है। ऐसी धारणा ही समत्व योग कहलाती है। न नीच है, न कोई ऊँच, न ही कोई भेद, न बन्धन, इसे ही समत्व कहा गया है, समत्व योग उच्चते। यही छठी कविता की अनुभूति है, यही आज्ञाचक्र है।

असंतुष्ट कौन

इन्द्रियों का उपयोग बाह्य जगत के लिये जो करता है, वही असंतुष्ट है। यदि अंतर्जगत के लिये करता है, तो परमानंद को प्राप्त होता है। प्रत्येक को प्रकाश अच्छा नहीं लगता, उल्लू जाति का पक्षी प्रकाश नहीं चाहता। जब अपने मन बुद्धि को विषयों से परे अपने आप में केन्द्रित कर देते हैं, तब हम पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाते हैं, यही सन्तोष है। परिणामतः बुद्धि प्रखर एवं प्रभावशाली बन जाती है, वाणी में प्रभाव उत्पन्न होने लगता है। ज्यों ज्यों आप प्रगति करेंगे, त्यों त्यों सांसारिक काम से मुक्त होते चले जायेंगे। सांसारिकता में व्यस्त होने की धारणा से प्रगति अवरूद्ध हो जाती है। मनसा, वाचा, कर्मणा 24 घण्टे अपने इष्ट के पास रहना, अपने समीप देखना। परब्रम्ह महान है, वह तुम्हीं हो।

आत्मा बुद्धि या ज्ञानस्वरूप है, शुद्ध बुद्धि ही आत्मा की देह है, उस रूप में ही उसे शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सतचिदानन्द स्वरूप कहा गया है। मन एक देशीय है, बुद्धि स्वरूप में ही उसे सर्वज्ञ कहा गया है। जब मन और बुद्धि आत्मा की और उन्मुख करने का प्रयत्न करता है, बुद्धि सात्विक और सत्य होती जायेगी और त्यों त्यों आत्मा की ओर उन्मुख होती जायेगी, इसी को कुशाग्र कहते हैं। मन स्वतः बुद्धि के पीछे पीछे चलने के लिये विवश हो जायेगा, मन की मलिनता आत्मा के सम्पर्क में पहुँचने के कारण दूर होती जायेगी और मन ज्यों ज्यों निर्मल होता जायेगा, आत्मा में ही रमने लगेगा। आप अपने दर्पण की भाँति शुद्ध स्वरूप का दर्शन करने लगेंगे, ब्रम्ह स्थिति को प्राप्त हो जायेंगे। जब तक श्वास् मालूम होता है, तब तक आप बाहर हैं, बाहय संवेदना शून्य होने पर इष्ट के दर्शन होने लगेंगे।

आपका ह्दय मोह से घिरा है, तन, धन, जन, विद्या, मान आदि किसी का मोह हो, इस मोह को उल्ट देना ही होम करना है, उदासीन होने पर वह ग्रंथि दिखने लगती है, तब आप सामर्थ्यवान बन

जायेंगे। तब तुम्हें अपने स्वरूप का बोध हो जायेगा, तब तुम संसार और ब्रम्ह के बीच की ग्रन्थि को खोल लोगे। अज्ञानवश आप अपने आप को एक साधारण व्यक्ति समझ रहे हो।

देह पूर्ण है

यह देह पूर्ण है और सब कुछ प्राप्त करने में सक्षम है। आदित्य वर्ण का ध्यान और कवच मन्त्र के जाप को साथ रखगें। जिसे शरीर का धन, मान का भय हो उसे कभी आनन्द प्राप्त हो ही नहीं सकता। तुम्हें इसी जन्म में ईश्वरत्व प्राप्त करना है, अतः धारणा में ढ़ील न आने दो। इच्छा की अधिकता के कारण सुख दुःख आते हैं, सफलता और असफलता में सामान्य रहना है। सुषम्ना को खोल लेने पर परलोक की प्राप्ति संभव है।

क्रियाएँ शरीर का अंग है, आत्मा तो दृष्टा मात्र है, कुछ न करना ही ध्यान है, सजग रहें कि हम आत्मा हैं। आत्मा के साथ एकात्मता रखना सबसे बड़ा एवं प्रभावशाली भजन है, इसी क्रिया से अहंकार जाता है। अहंकार समाप्त हुआ कि अस्मि भाव की जागृति और पुष्टि होती है, कर्त्ता पन से दूर हुए कि स्व भाव स्वयं होने लगता है। यह मोक्षानन्द की अवस्था है जिसे शरीर धारण की हुई अवस्था में प्राप्त करना है। योग निद्रा में शरीर भाव नहीं रहता, अतः यह अभ्यास करना है कि अधिक से अधिक काल तक योग निद्रा में रहें।

द्रष्टा का अनुभव कि दृश्य वस्तु और कुछ नहीं तू ही है, तू उस दृश्य का ही स्वरूप है, वस्तु बनी हुई है, वह हमीं तो हैं, उसे वस्तु न समझकर आत्मा समझने पर उसका प्रभाव मन पर नहीं पड़ता है। यही सर्वसंकल्प के त्याग का रहस्य है जो क्रमशः निद्रा, जागृति, मध्य सन्धि की स्थिति करने पर प्राप्त हो जायेगी। प्राण आपान को सम करना है, दृष्टा न रहा तो फिर दर्शन के रहने का प्रश्न ही नहीं रहा, ऐसा अभ्यास अपने को करना है, यही ब्राम्ही स्थिति है।

गुरू को समर्पण ही आत्मा को समर्पण है। जागृत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे होना है, तुर्यावस्था प्राप्त करना ही लक्ष्य है, जिसमें साधक को कोई होशो हवास नहीं रहता, कोई खिला दिया तो खा लिया नही ंतो अपनी मस्ती में मस्त रहता है। सुषुप्ति अवस्था का बोध होता रहे, उस आनन्द का बोध होता रहे, तो यही तुरीयावस्था है। यदि ध्यान में बाघ दिखाई दे पर भय का कोई संचार नहीं हुआ, उस भय के भाव को आप पचा गये और स्थिर रहे, यही वास्तविक समाधि लक्षण है, इसे चेतन समाधि कहा गया है, काम क्रोध, मोह, लोभ का नाश हो जाता है, यह आत्म स्थिति की अवस्था है।चेतन समाधि में वासनाओं की समाप्ति हो जाती है, बोध बना रहता है। आपको गुण रहित होना है, आत्मा गुण रहित है, चिंतन रहित स्थिति को प्राप्त करना है। तीनों गुण एक साम्यावस्था को प्राप्त हो गये, तब साधक शान्तातीत बनता जाता है। जब तक साधक में एकनिष्ठा नहीं आती तब तक शुद्ध सतोगुण बन ही नहीं सकता, मनसा, वाचा, कर्मणा, गुरू और ब्रम्ह में एकात्मता का विकसित होना ही एकनिष्ठता है, तभी वह शुद्ध सतोगुणी हो जाने की योग्यता प्राप्त करेगा। गुरूजी से कोई आदेश प्राप्त करना चाहते हैं तो निल होकर उनका ध्यान करे, आपको वहाँ से प्रेरणा मिलेगी, उचित मार्गदर्शन मिलेगा, आपकी समस्या का स्वमेव समाधान हो जायेगा या कठिनाई का हल प्राप्त हो जायेगा।

गुरूजी का फोर्स

जो चेतन तत्व है, जो शक्ति है, वो हमारे पूरे शरीर में बह रही है, ये जो शरीर है एक इंस्ट्रूमेंट है जड़ है, इसको चेतना देने वाली शक्ति है वो दिखती नहीं है मगर उस शक्ति का कार्य दीखता है। इसी को जड़ चेतन ग्रंथि बोलते हैं।

ये शक्ति जब तक आपके शरीर में कहीं भी, किसी भी स्थान पर कार्य कर रही हो, तक तक आपके चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं होता। ये जो शक्ति इसमें खेल रही है डिवाइन फोर्स है, divine force dancing in this body. परम् पूज्य गुरूजी ने बड़े सरल तरीके से समझाया है, जैसे एक साँप है वो एक कोने में अपने क्वाइल पर बैठा है, इतना शांत और ऐसे बैठा है कि हम जान नहीं पाते वो साँप है या रस्सी। वो जो ऐब्सलूट ब्रम्ह जो कुछ नहीं करता निर्गुण निराकार जैसे बैठा है, मगर वही अपने क्वाइल छोड़कर चलने लगे तो क्या हो गया सगुण साकार तो इस सगुण रूपी शक्ति से सारा जग चल रहा है। ये जो शक्ति ब्रम्हांड में व्याप्त है, वहीं शक्ति हमारे शरीर में खेल रही है, और जब तक इस शक्ति को हम वापस नहीं लाते तब तक विचारों का निरोध हो नहीं सकता, इसी को पातज्जल योग सूत्र में प्रत्याहार बोलते है याने वापस लौटना। हम बैठे है हमारी ऊँगली हिल रही है तो वहाँ वो शक्ति काम कर रही है आप बाहर है। तो ये जब तक विड्रावल नहीं हो जाता, तब तक स्प्रिचुवल प्रोग्रेस नहीं मिलती।

जब ये चेतन तत्व शरीर की गुत्थियों से अलग होता है तब क्या होता है? ये शक्ति जब वापस आती है और सेंट्रल केनाल में घुसती है तो इसके एलांग पॉवर हाउसेस है जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्ध। इस तरीके से ये ऊपर आने से अपने स्वरूप में आने लगती है। ये जब फलीभूत होकर अपने स्वरूप में आती है तो इसी को ज्ञान कहते हैं। दूसरे इस प्रक्रिया में जो गुरूजी का फोर्स लगता है जिससे ये वापस आकर वो शक्ति अपने स्वरूप में आती है उसके क्या लक्षण है ? गुरूजी के फोर्स लगने के बाद जो लाइट वहाँ आती है वो आत्मिक लाइट है, इससे आपको ज्ञान मिलता है। ये शक्ति जब ऊपर आती है तो उसके एन्टीनास खुल जाते हैं और सब जगह की उसको नालेज मिलती है। गुरूजी के प्रभाव से ये जन्म जन्मांतरों तक साथ देती है, ये आपको पूर्णता की ओर ले जायेगी।

(डॉ व्ही ए. शिंदे)

क्रोध न आए

जो बोयेंगे वो ही काटेंगे। सब अपनी सेवा करते हैं, यही वेदांत है, जहाँ तक प्रयास करें यह क्रोध न आये। क्रोध की शक्ति को सहन शक्ति में बदलना यह प्रयास से, अभ्यास से सम्भव है। गन्दी बातें, गन्दे विचार किसी के सुनने में न आयें, इसे ही तप कहते हैं, यह तपस्या साधारण बात नहीं है। जिसे प्रेम और सत्य कहना चाहिये,, उस पर चलो, करके दिखाओं आचरण में, जब सेवा होगी। प्रेम ओर सत्य दोनों इसी से समाज में साफ सुथरे होंगे, यही वास्तविक शुद्धि है अन्तः करण की शुद्धि इसे प्राप्त करना है।

रामकृष्ण हुए, समाज में रहकर तप करके, मुक्त हुए। यह कब होता है? सुषुम्ना के द्वार खुलने के बाद होता है, जिनके द्वार खुले वह मुक्त हो गए।

आत्मा स्वयं ज्योर्तियभवति, यही अग्नि है। इसके उदीयमान होने के बाद सम्भलकर रहने की आवश्यकता होती है, अन्यथा जो हम कहते, करते हैं, भोगने आना पड़ेगा, जो भोगना है अभी भोग लो।

आपको स्थायी होना है

अरे, यह सब झूठ बात है, खुदा ने कभी शैतान पैदा नहीं किया, डिवाइन से डिवाइन ही आया। अरबों, खरबों, नील, पदम, में आपको एकाध मिल जाये तो मिल जाये, वर्ल्ड में एकाध अनुभवी मिल जाये, तो मिल जाये, ये तो तुम्हारे सामने बैठा हुआ है, ये अहंकार नहीं है।

मैं रामदास नहीं हूँ, लेकिन रामदास का मार्ग मेरे से भिन्न नहीं है। रामदास शादी नहीं किये भाग लिये, मैंने शादी किया और बाल बच्चे हैं, मैं अकेला नहीं हूँ।

शरीर का परिवर्तन है, आत्मा तो कहीं आता जाता नहीं, आत्मा तो सर्वव्यापक हैं। जब सर्वव्यापक है, तो आना जाना कहाँ है?जब आत्मा सर्वव्यापक है तो हिल डुल सकता है क्या? नहीं, लेकिन हिलता भी है और डुलता भी है। एनर्जी स्थायी नहीं है, अस्थायी है, यह हिलती डुलती है।

यही देश रहेगा, बाकी सब देश चले जायेंगे, यही बात स्वामी विवेकानन्द जी ने विदेशों में कहीं थी। आप कितने भी आक्रमण भारत में करो, यदि एक भी आत्मज्ञानी व्यक्ति हिन्दुस्तान में रहेगा, तो हमारी संस्कृति को कोई भी दगा नहीं दे सकता, धक्का नहीं दे सकता। वह मिट जायेगा लेकिन इसको मिटा नहीं सकता है। यही कार्य मैं कर रहा हूँ।

ये जैसा दिखता है, वैसा नहीं है, यह साधारण नहीं है, असाधारण व्यक्ति है। इसमें जो अभिव्यक्ति है, वो महाशक्ति है, वह सर्वशक्तिमान है, सब जगह विद्यमान है। जिस दिन आपने दीक्षा ली, गुरूचरणों की पूजा की, उसी दिन से आप मुक्त हैं। इससे बढ़कर ब्रम्हवेत्ता और कोई भी नहीं है, दुनियाँ में ये जो बोल रहा हूँ। जब तक सत्पुरूष मिलता नहीं, उस परमात्मा को कोई भी प्राप्त न कर सकता, कोई भी साक्षात्कार न कर सका, यह है गुरूजी की महिमा।

आपको स्थायी होना है, सेल्फ पर होना है। जो गुरूजी ने आपको बताया है, उसमें बने रहना है, उसमें बने रहने से, ये बराबर जो दिव्य दृष्टि है, आप लगे हुए हैं, तो भविष्य कभी नहीं आता। आप अंदर जायेंगे और अधिकारी होते हैं और जो आप कार्य करते है, उसका डर नहीं होगा, बनेगा कि नहीं बनेगा, बनेगा कि नहीं बनेगा, ये सब चला जाता है। कभी भी चिंता नहीं होती और आपका कार्य, आपका फल, अपने आप हो जाता है। जब तक यह शरीर आपके हाथ में वर्तमान है, तब तक कर लो, जो करना है। आपको इन्द्रियों की सीमा को लांघना हैं, लांघने के बाद वहाँ आत्मा का प्रवेश है।

अभ्यास में लक्ष्य लगाते लगाते, डूबते डूबते, साधक को प्रकाश आने लगता है और फैलते फैलते इतना फैल जाता है कि सारा यूनिवर्स, सारा वर्ल्ड भर जाता है।

गुरूजी के चरणों को लक्ष्य में रखना, ध्यान करते करते मणिवत, स्फटिक मणि के समान दसों नख हो जाते हैं। जैसे साफ पानी में सब चीजें दिखाई देती है, वैसे ही बैठे बैठे सारी दुनिया उसे दिखाई देने लग जाती है। सब कार्य प्रकृति करती रहती है, कहां से, किधर से आता है, सब बराबर होता जाता है, तब आत्मयोग हो गया, यह गुरू कृपा अंजन है।

एक तत्व के अभ्यास से पांचो तत्व विशुद्ध हो जाते हैं, निरोध होता है, यही सूक्ष्म शरीर है। इस

शरीर में आत्मा अत्यंत असंग है, निर्मल है। टेलीपैथी, इंटयूटिव् पॉवर होने लगता है। सभी काम को बाजू कर कुछ मिनट बैठकर आत्मा का अनुसंधान करना चाहिये। जब मन शुद्ध हुआ तो कठौती में गंगा। फिर वह मस्त रहता है।

आत्मा ही त्राता है

अनुभव के बिना बोलना बकवास है, आत्मा ही सबकी त्राता है, स्व का अध्ययन ही ध्यान है, ब्रम्हचिंतन ही ध्येय होना चाहिये। हमें अपने आप में ही रहना है, यही भावातीत होना है, उसे ही मौन स्थिति कहा गया है।

उस परम् तत्व की ओर जहाँ से आये हो उन्मुख रहो। जब तक देह है, दुःख सुख आते रहेंगे और समाप्त भी होते रहेंगे। यदि दुःख न टाल सको तो गुरूदेव की ओर उन्मुख करके स्वयं निश्िंचत हो जाओ। प्रयत्न में ढ़ील न आने दो। अनासक्त होकर अंदर से उसकी प्राप्ति की इच्छा रखने पर दर्शन सुलभ हो जाता है, संसार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

जब ईश्वर का सानिध्य महसूस होने लगे, हर जगह उसका आभास हो, वही ज्ञान है। तब सभी वस्तुएँ सजी मालूम होने लगती हैं और मैं ही वही हूँ बोध होने लगता है। तब सर्वत्र और सब में वही दिखता भी है, हर क्षण मन इसी स्वरूप चिंतन में लगा रहता है।

मन का मैल निकाले बिना न साधना होगी न ही भक्ति। चित्त प्रसन्न होते ही सारे दुखों का अवसान हो जायेगा। आप अपनी धारणा को जिस अवस्था या रूप में रखोगे, वैसा ही काम होगा, निराशावादिता से दूर रहो। वस्तुतः मन निर्मल रहता है। कोई विचार आया तो उठाकर चित्त में डाल देना या छोड़ देना, यह साधक के ऊपर निर्भर है कि किसे रखे और किसे छोड़े, यही पाप और पुण्य है। दोषों से बचते रहें, इन्द्रियों पर काबू रखें।

मौन रहने का प्रयत्न करें और अधिक से अधिक काल डूबे रहे। यही साधना अब आपको करनी है, ध्यान रहे। बगैर खीझे अनासक्त भाव से मौनावस्था में रहने का प्रयत्न करो, किसी बात की चिंता मत करो, सब गुरूजी पर अर्पित कर आनन्द में डूबे रहो। जब तक आप ध्यान मग्न हैं, आप सत्चिदानन्द स्वरूप है, आप भी वही हैं।

जहाँ संसार में आये कि मानव हो गये, कामना, वासना का संकल्प न करें, विचार ही समय पाकर मूर्त रूप धारण करता है। मौन स्थिति आने पर साधक निन्दा स्तुति से दूर रह सकता है, मन की समाहित स्थिति अर्थात मौन स्थिति, शांत स्थिति, शुद्ध स्थिति।

साधना में संकल्प लेकर बैठ जायें, चाहे जो भी संकट उत्पन्न हो जायें। नहीं हटूँगा, चाहे प्राण चले जाये, तब लक्ष्य सिद्ध होगा। तात्पर्य ये है कि अपनी साधना इतनी दृढ़ होगी तभी काम, क्रोध, दुर्व्यसनादि पर काबू पाया जा सकता है। किसी प्रकार की चिंता करें ही नहीं, तभी समाधि की ओर क्रमशः अग्रसर होंगे। कोई समस्या आ जाये तो शुद्ध संकल्प से पूज्य गुरूजी के ऊपर डालकर वे ही हल निकाले और समाधान करें।

आप पुनः निश्िंचत होकर अपने रंग में डूबें क्योंकि आप स्वयं सत्चिदानन्द स्वरूप हैं। अतः अपने स्वरूप का चिंतन करें, आपके चारों ओर आनन्द ही आनन्द है उसे रियलाइज करे, रसास्वादन लेने में तल्लीन हो जाये। देह या शरीर की चिंता न करें, ना ही घर की, धन की न ही

सदस्यों की। फिर देखिये कैसी मस्ती आती है।

हाँ, किसी से द्वेष न हो, न ममत्व, क्योंकि ये सब दिखाने के लिये है। आप अकेले आये हैं, और अकेले जायेंगे और जाना पड़ेगा ही।

पचाओ

जो सत्य मुझे मिला, वही दीक्षा के रूप में दिया। इस मार्ग में जो कुछ प्राप्त होता है, गृहस्थ लोग इसे प्राप्त नहीं कर सकते ऐसी बात है ही नहीं। 14वीं एवं 16वीं शताब्दी के बीच ऐसे सन्त हुए जो बाल बच्चेदार, गृहस्थ थे। उन्होंने गृहस्थ रहकर अपना आत्मकल्याण और दूसरों का आत्मकल्याण किया। कहने का तात्पर्य यह है कि मुक्ति के लिये घर परिवार से बाहर जाने, जंगल जाने की आवश्यकता नहीं है, गृहस्थ रहकर भी लोग मुक्त हैं। साधना में जो मिलता है उसे आत्मसात करो, नशे को पचाना आ गया तो सारी शक्तियाँ मिल जाती है, अन्यथा घर वाले भी छोड़ देते हैं।

प्रातिभ याने <u>प्रतिभा / श्रावण / वेदना / आदर्श / आस्वाद / वार्ता ये</u> छह शक्तियाँ मिल जाती है, ध्यानपूर्वक साधना द्वारा ये प्राप्य हैं। इन शक्तियाँ को प्राप्त कर अहंकार से बचना चाहिये। ऐसी स्थिति में पहुँचना है जहाँ से वाणी टकराकर वापस आ जाती है, जो जिस उद्‌देश्य से आया है, वह बनता चला जाता है। अतएव सिद्धियों के फेरों में पड़े बिना आगे बढ़ते जाना ही उचित है। सिद्धि, असिद्धि, हानि, लाभ को समान समझो, ये तो भोग है, पचना है पाप कर्म करते करते।

रोते क्यों हो, संयम करो ओर जितना मिला उसे पचाओ और तब आगे बढ़ो। जितना इस मार्ग में मिलता है, वह जाता नहीं बना रहता है, हालत और भी अच्छी हो जाती है।

यह जो आत्मज्योति है, वह ही कल्पतरू है। सब ऋद्धियाँ सिद्धिया इससे संभव है, जो मांगों जैसा मांगों मिलता है। आजकल पूजापाठ, पुरोहित और उनके कर्म व्यर्थ प्रतीत होते हैं। जब तक ग्रंथों में लिखी बातों को आत्मशक्ति से विहीन व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कराया जायेगा अपेक्षित परिणाम नहीं निकलेंगे।

उत्साहित होकर अभ्यास करो

माला फेरत जुग गया, माने अनेक युग बीत गये, अनेक जन्म बीत गये, गया न मन का फेर, मन में जो दुविधा है, संशय है, यह गया नहीं। करका मनका डारि के, ये हाथ में जो माला लिये हो, उसे फेंको और मन का मनका फेर, मन को मनकों में फेरो, अपने मन को रीढ़ के स्पाइनल कार्ड के प्रत्येक मनकों में फेरो। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छैः सात ऐसे ऊपर गये । फिर गुरू बता देते हैं कैसे करना है। जैसे जैसे आप घर्षण के द्वारा अंदर बाहर अंदर बाहर, जायेंगे घर्षण करने से अग्नि प्रकट होती है माने सोई हुई जो शक्तियाँ हैं, अपने अपने केन्द्र से विकसित होने लग जाती हैं, विकसित होकर बाहर निकलने लगती हैं। आप शक्तिमान हो जाते हैं, आपके सारे कार्य होने लगते हैं। गुरूकृपा से सुषुम्ना खुल जाना चाहिये, तब प्राण को ले जाकर रूप को स्थापित करें। यह सुषुम्ना मार्ग से आत्म शक्ति को, प्राण को लेकर, जब ऊपर ऊपर सब जगह पहुँचा देते हैं तब होता है, उस मार्ग में गमनागमन होना चाहिये अपना। यह सब मुफ्त में नहीं होता।

अभ्यास से धीरे धीरे मस्तिष्क में आते हैं, तो मस्तिष्क भारी हो जाता है। मस्तिष्क में वह सेल जिसका नाम ऐम्पर कैथेपिक है, उसमें रस भरा है जिससे एंडोर्फिन सिक्रेशन निकलता ह। तो जैसे अफीम खाने से नसा होता है वैसे ही होता ह। यह सिक्रेशन फैलते फैलते सारे मस्तिष्क में भर जाता है और आप कई दिनों तक पड़े हुए है, न खाना, न पीना, न शौच आदि कुछ भी नहीं। इसलिए इस शरीर को स्वर्णमयी कहा गया है, नहीं तो यह कचरा है कोई काम का नहीं, अगर सुषुम्ना को खोलकर ऊपर नहीं आये तो।

वही व्यक्ति इसका विकास करके महान हो जाता है, यही अभ्यास का प्रकार है। माने जब उसमें रंग जाओगे, रंगते जाना है, माने उत्साहित होकर अभ्यास करना चाहिये, रोकर या सुस्त होकर नहीं। अभ्यास से अपने आप होता है, जब आपने सरेंडर कर दिया, और रेंडरिंग माने भटकना भटकाना छोड़ दिया। माने अभ्यास उत्साहित होकर करना चाहिये। इसी जन्म में हम सभी आत्म शक्ति को अपने पद को प्राप्त हों।

गुप्त रहस्य

दस इन्द्रियों से विजय प्राप्ति पर महावीर नाम पड़ा। प्रज्ञावस्था में ही मन शांत होता है, लेकिन संशय दूर नहीं होता, इसके परे ज्ञान होता है। प्राण प्राण में समायी, पश्चिम मार्ग, ऊपर यही जीवन मुक्ति है। मोक्ष है।

चार कार्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ऐश्वर्य का अभाव कभी भी होने नहीं देता कोई कामना नहीं। कामना है किन्तु निष्काम आत्मा। अनुसंधान जो है, वह निष्काम, याने फल की आशा ही नहीं। प्रकृति से संबंधित कार्य याने सकाम। निष्काम कार्य में जब आप रत होंगे तब प्रकृति उसकी पूर्ण व्यवस्था यथा सम्भव या समय, आवश्यकतानुसार करती है, या करा देती है। जीवन मुक्त होने के लिये मानव शरीर युग युगांतर के पश्चात् इस सन्धि को साधने के लिये प्राप्त होता है। आप तरें और औरो को तारें। प्रारब्ध माने प्रा + लब्ध अर्थात् पूर्व जीवन का + प्राप्त संचित भाग।

भाग्य माने भाग share, बाटा गया। आत्मा का गुण ऊपर की ओर जाना है, आत्मा की शक्ति सुषुम्ना में खेलती रहती है। अपनी बुद्धि को जिस समय आत्मस्थ कर देंगे याने सुषुम्ना में घुसकर आज्ञा चक्र में, तुर्यावस्था में, मृत्यु को पार करके आयेंगे, तब वह शांत्यावस्था होगी, सब अभाव दूर हो जायेंगे, हम सत् को प्राप्त कर लेंगे।

आज्ञा चक्र में प्राण को स्थापित कर देने पर दिव्यत्व को, astral body, illuminating body को प्राप्त हो कर, भूत, भविष्य का ज्ञान हो जाता है और वो काल जीत हो जाता है। सुषुम्ना कालं भवति।

सुषुम्ना को ependymal lining of central canal पर अभ्यास करने से प्रत्याहार होता है। संवेदना चली जायेगी। ये विषय नहीं विषयातीत है, हम निर्विषय हो जाते हैं। वही सुषुम्ना, जहाँ हमारे संस्कार भरे हुए हैं, neurones में, जिसको सहस्त्रदल कमल कहते है, phylum terminate से अंदर जाने पर सब होता है।

हमारे जो शुभाशुभ कर्म हैं, संस्कार हैं, वे हमारे मेरूदण्ड के भीतर बड़ी नाड़ी है, सुषुम्ना जिसके भीतर है, इसके बाहर से आकर सारे संस्कार वृहत मस्तिष्क में भरे हुए है।

पीनियल बॉडी माने ज्ञान माने तीसरी आँख वो कामातुर हो जाता है, वीर्य उत्पन्न होता है, गोनार्ड रस पीनियल में पैदा होता है, यह बदल कर ज्योति के रूप में आ जाता है। पीनियल बॉडी में प्रवेश होते ही बुद्धि आत्मस्थ हो जाती है। अभ्यास के द्वारा उसको ही ऊपर चढ़ाना है, उसी का अनुसंधान करना है, उसी का अभ्यास करना है। आज जो नाक के द्वारा साँस लेते हो, उसे सुषुम्ना द्वारा लेना है, यह अभ्यास है, यह गुप्त है, उस रस को ही ऊपर ले जाकर फैलाना है, आज इस रहस्य को खोल दिया।

मानव जन्म और पूर्णता

किये गए शुभ अशुभ कर्मो का जो परिणाम है, उसे सैकड़ो वर्षो तक करोड़ों जन्म लेकर भोगना पड़ता है। जब तक वह भोगा नहीं जाता बुद्धि शुद्ध नहीं होती।

बुद्धि के साथ जो ज्ञान मिला है, आत्मज्ञान, उसी ज्ञान का सदुपयोग करके हम मानव जन्म प्राप्त होने पर माता, पिता के ऋण से, पुण्य पाप, स्वर्ग नर्क से, तथा जन्म मरण के फेरे से मुक्ति पा सकते हैं। केवल इसीलिये मानव जन्म प्राप्त होता है।

जो संसारी जीवन जीते हैं, उनके हजारों विचार, लाखों कल्पनायें दिन रात, सपने मैं भी बदलते रहते हैं, बहिर्जगत से, इतर मानव प्राणियों से डिस्टर्ब रहते हैं।

बुद्धि जो चंचल है, बुद्धि को चित्त कहा गया, मन को भी चित्त कहा गया, योगियों का चित्त एक होता है।

जिनको अनुभव है, ऐसे सतगुरू की पद्धति से नित्य करता है, नित्य माने कंटिन्यू, अनब्रेकेबल, तब वो निष्काम कर्म अखण्ड हो जाता है, खण्डित नहीं होता। तब उसमें न कोई संशय है, न कोई इतर विचार, न तर्क, न कोई कार्य।

यह जो साधना है, निष्काम कर्म है, इससे क्या होता है?ये आधि दैविक, आधि भौतिक, आधिदैहिक ये जो तीनों ताप हैं, दूर हो जाते हैं।

अन्तःकरण, जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से बना है, इसमें अनेक जन्मों के संस्कार संचित हैं, इसलिये वह इतना होने पर भी नित्य नहीं हो सकता है, नित्य होने पर क्या होगा? वे पूर्व के संस्कार नष्ट हो जायेंगे, वह विदेही हो जायेगा, माने उसको सब कुछ भूल गया। न देह की सुध है, न जग की सुध है, न आने जाने, न सोने की, न जागने की, माने किसी प्रकार की सुध नहीं है।

इस शरीर को द्वारिका कहा गया, नव द्वार हैं इसमें। यह शरीर कर्मेन्द्रियों से बंधा हुआ है। अन्तःकरण साफ होने पर मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार, ये सब एक हो जाते हैं।

विचारों को दबाने के लिए जप करना, यह प्रारम्भिक अवस्था है, सेकण्ड अवस्था है स्मरण माने स्मृति अर्थात् छवि याद, आपके सामने रहे। वह एक वृत्ति अखण्ड हो जाती है, तो उसे सोहम्स्मि माने विदेह माने उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके बाद ऊपर आज्ञा चक्र, पीनियल बॉडी में जाता है। आत्मा प्राणों समेत जैसे पीनियल बॉडी में प्रवेश किया, वैसे ही प्रकाश आ जाता है, वह निराकार आत्मा साकार ज्योति के रूप में प्रकट हो जाता है। जब बुद्धि साधना के दौरान, ई–नाम शक्ति, आत्म शक्ति का है, जब इन दोनों का मेल तीसरे नेत्र में, ज्ञान नेत्र में होता है, तो निराकार आत्मा ज्योति रूप में साकार हो जाती है।

तब सम्पूर्ण शक्ति, कौन सी शक्ति–अष्टसिद्धि, नवनिधि, यह शक्ति आज्ञाचक्र में प्रवेश करती है। वह भूत, भविष्य देखता है, अनेक जन्मों का भोग, अभी थोड़ा सा बाकी है, सुख दुःख उसे शरीर से भोगना पड़ता है।

जब साधक अभ्यास करते ब्रम्ह रन्ध्र में पहुँचता है, तब पूर्ण हो जाता है। पूरा ब्रम्हांड ज्योति से भर जाता है। साधक अकेला उस आत्मा को, निराकार ब्रम्ह को, देखता है।कबीरदास ने आज्ञाचक्र में ज्योति रूप में प्रकट होने पर सोअहम कहा, निरातिशय अवस्था अर्थात् ब्रम्ह रन्ध्र में स्थापित होकर अहम् ब्रम्हास्मि हो गया। ब्रम्ह रन्ध्र में संशय निर्मूल हो जाता है क्योंकि वहाँ न देश है, न काल है, न भय है, न मोह, न काम, न क्रोध है। अनन्त जन्मों का, कर्मों का, भूत भविष्य का पूरी सफाई हो गई, तब वह परम् ब्रम्ह हो गया।

गुरूजी के आदेश

1. जो गुरूजी का सेवक है, उसकी तरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता।
2. सद्गुरूजी के सभी वचनों को आचरण में लाना अति आवश्यक है, अन्यथा हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। केवल वचनों को ही तो श्रद्धा, भक्ति, तन, मन सबके साथ आचरण में लाना है।
3. हमेशा वर्तमान में रहो, सन्तोषी बनो, भौतिकता, बौद्धिकता, मानसिकता, नैतिकता से पूर्ण हो जाओगे, तुम्हीं महान हो।
4. संसार में रहने और संसार के कार्य करने में कोई दोष नहीं। केवल दासी के समान मन भाव रहना चाहिये, अलिप्त भाव से करना चाहिये। घर के काम करना आवश्यक हो करना, किन्तु मन आत्माराम में लगा रहे। यहाँ विषयों का प्रवेश हो नहीं सकता।
5. इच्छायें कम करो, स्वरूपवस्था में रहो मैं पन को भूलो, कर्म तो प्रकृति करती है, किन्तु मैं करता हूँ, यह भाव आ गया तो बन्ध गया।
6. मनुष्य को स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, परावलम्बी का अर्थ है देह रूचि।
7. यदि गुरूजी से आदेश प्राप्त करना चाहते हो समर्पित होकर उनका ध्यान करो, प्रेरणा मिलेगी, उचित मार्ग दर्शन मिलेगा। आपकी समस्या का स्वयमेव समाधान हो जायेगा या कठिनाई का हल प्राप्त हो जायेगा।
8. मूर्ति में ईश्वरत्व का आरोप करते हो, तो देह में क्यों नहीं करते हों। इसे डिवाइन करने का प्रयत्न करो। शरीर यन्त्र है, इसे दुरूस्त करो। जैसा बालकों को सिखाते हो, वैसा स्वयं सीखो।
9. शरीर छोड़ने के बाद भी मैं आपके पास हूँ। ये कोई बोलेगा नहीं, मैं बोलता हूँ क्योंकि 500 साल पहले के लोग मुझे मिल चुके हैं।
10. मैं किसी के घर नहीं गया, पेड़ों के नीचे ही रहा, इस तरह साढ़े ग्यारह साल तक हम रहे, न मुझे मच्छर काटा, न साँप काटा, न भूत लगे और न ही प्रेत लगे। आपके स्नेहपाश ने मुझे बाँधा, नही ंतो हमे कोई नहीं बाँध सका है। तब हाथ पैर सब ठीक

थे, अब स्थिति बदल गई हैं। अंतड़ी गयी , हड्डी गयी, जैसे यह दुनिया बदल गई वैसे ही हमारी दुनिया बदल गई। यही कार्य करते हुए आज हम यहाँ है, कम से कम 200 से 300 लोग उन्नत हुए उन्होंने अपने आप को जाना अपने आप को पहचाना।

लेकिन दुःख की बात है कि मैन इस आफ्टर हनी एण्ड मनी। जिसके लिए मैं भारत आया था, आज वह नहीं है।

11. यहाँ देर है, वहाँ देर नहीं है, उल्टा बोलते हैं लोग, वहाँ तत्काल है। इसलिये अपने आप को पढ़ो, हम क्या करते हैं, क्या नहीं करते, हम घर बना रहे, चारित्य क्या है? चरित्र घर बनाना है, यह न भूलो। औरो को पढ़ने के बजाये स्वयं को पढ़ों बहानेबाजी करने की बजाय स्वयं को पढ़ो आपने आप को देखो हम कैसे हैं?हम क्या करते है? प्रकृति की क्रिया का नाम धर्म है।

12. तुम्हारा धर्म क्या है? हमारे धर्म मनीषियों ने बताया है, बड़े बड़े मन्दिर, मस्जिद देवालय बने हैं क्यों?जो याद दिलाते है कि अभी भी चेतो। अपने आप को जानना है, अपने आप को पहचानना है, मनुष्य सर्वगुण सम्पन्न है।

13. मेरा जन्मजात है, कई जन्मों से हे। जब आत्मा सर्वज्ञ है, सर्वत्र है, फिर चिंता किस बात की।

14. यह कोई काम की नहीं, जो भी बाहर का है। आपकी बुद्धि स्फटिक मणिवत हो जाएं, आत्मानंद प्राप्त हो, परोपकार होता रहे, औरों का कार्य होता रहे, आपकी बुद्धि निर्मल बनी रहे, बस यही मुक्ति है।

15. ज्योति के रूप में उसका ध्यान करना चाहिये, जपना चाहिये, इससे जो आनन्द प्राप्त होता है, वही सत्चिदानन्द है, उसे ही पकड़ना है। यही आनन्द आपका सतचिदानन्द है।

16. रामनाम का जाप कर घूम गए और प्रथम पूज्य गणेश जी हो गये। इसका अर्थ राम का, आत्माराम है, वेद माने ज्ञानाज्ञान याने आत्मज्ञान। आत्मज्ञान सर्वोपरि है, बाकी सब अज्ञान है, आत्म ज्ञान से प्रथम पूज्य हुए।

17. नाम के काम को मनन करना है, उसे प्राप्त करना है, मनन करने के उपरांत ही आपके पास पहुँचते हैं। अगर मनन नहीं करेंगे तो उस मन्त्र से आपकी रक्षा नहीं होगी।

18. भावना को ओत प्रोत कर देना हैं। ओत प्रोत होने के पश्चात् एकाग्रता बढ़ जाती है और जहाँ पहुँचना, केवल वही रह जाता है।

19. सुख दुःख में प्रसन्न रहना आवश्यक है। जब इस शिक्षा का विकास हो जायेगा तब दुनियाँ का काम आप कर रहे हैं, जब आप दूसरों का काम करते है तो सफलता, असफलता का भाव कम रहता है, जिसका वह काम होता है। आपको सिर्फ काम से मतलब रह जाता है। अगर सफल हो गए तो सफलता उसे मिलती है, असफल रह गए तो असफलता उसे मिलती है।

20. जैसे राजा किसी को दे दे या पूर्ण दान कर दे, वह कुछ पर विशेष कृपा कर सकता है, उस सत्ता रूपी दरबार से करता है। उसी प्रकार वह महाशक्ति जैसा चाहे कर सकता है।

21. ये ये चाहिये मुझे सामाजिक कार्य के लिय। हाँ भाई हो जायेगा, यही ब्लेसिंग हैं, यही सत्ता है। ये ही बुद्धि जब आत्मसात हो जाती है तब जो आशीष होता है, उससे अपने आप कार्य सिद्ध होते जाते हैं।

22. जिनके स्मरण मात्र से किसी का भी काम बन जाये, चाहे वह शिष्य हो या न हो, ऐसा सदगुरू, सत्पुरूष होना चाहिये।

23. आत्मोत्थान के लिये जो प्रक्रिया चाहिये, आपको वो अवश्य मिली है, उसे प्राप्त करने के बाद जिस प्रकार से सारे कार्य आप संसार में करते है, उसी प्रकार अपने लिए भी कुछ करिये। सब लोग आपसे कार्य लेते हैं, समाज वाले, राष्ट्र वाले। घर वाले, सब कहते है कि हमारा करो, और अंत में कह देते है कि हमारे लिए क्या किया?कोई ये नहीं कहता तुम्हारा कुछ काम हो तो हम सहायता करें।

तात्पर्य ये है, हमको अपने लिये स्वावलम्बी होना चाहिये, माने स्व जो आत्मा है उस पर अवलम्बित होना है।

24. अपने बाल बच्चों के बीच स्त्री से व्यवहार रखते हुए अपने आप को न भूलें, एकांत में बैठ चित्त शुद्ध कर जो आपको प्रक्रिया दी गई है, उसमें लग जाओं। फिर जो सुख है, वो अपार है, उसका अंत नहीं अनन्त है, आप महान हो जायेंगे।

25. स्वधर्म में रहकर अपना उद्धार करने की जो प्रक्रिया है उसमें यदि आपका निधन भी हो जाये, शरीर भी गिर जाये तो भी श्रेयश है। अगले जन्म से ही सारी शक्तियाँ पाकर, विकसित होकर अपना कल्याण करते हुए समाज का भी कल्याण करते रहेंगे। ये धर्म है।

26. हमारी शिक्षा दीक्षा केवल उपजीविका के लिए है। जीविका को हमने छोड़ दिया और उपजीविका के पीछे फिर रहे हैं।

आपने आप को इस तत्व को जानने के लिये हमारे पास समय नहीं है। यही भोग है।

27. लोग पूछते हैं, योगाभ्यास से क्या मिलता है, क्या रखा है इसमें ?नहीं, बहुत कुछ मिलता है, इससे आपमें गुण आएंगे, सिफत आएंगे, आपकी बुद्धि जो विकारों से युक्त है, जैसे जैसे आत्मा की ओर पहुँचते जायेंगे, अन्तरमार्ग में घुसते जायेंगे, वैसे वैसे विकास बदलते जायेंगे, आप डेस्टिनी को बदल सकते हैं। नाना प्रकार के सुख दुःख आपके सामने है, वो बदल सकते हैं।

परिवारजनों के अनुभव

1. 6 अक्टूबर को दुर्ग में कार्यक्रम होने पर एक गुरूबहन ने देखी कि जिधर सब गुरूभाई, बहन ठहरे थे, वहाँ से गुरूजी चलते हुए आये और मंच में पूजा होने के पहले से बैठ गए थे।

2. एक गुरूभाई को उनके कुछ रिश्तेदारों के द्वारा जमीन के सम्बन्ध में कोर्ट केस कर देने के कारण बहुत परेशान थे। ध्यान में एक दिन दो तीन घण्टे तक बैठ गए, तो गुरूजी उनके सामने ध्यान में प्रकट हो गए और बोले, तुमको क्या बोलना है, बोलो। वो अपनी समस्या

बताये। गुरूजी बोले मैं जानता हूँ कि तुम सही हो और तुम भी जानते हो कि तुम सही हो, तुम्हें कुछ नहीं होगा मैं तुम्हारे साथ हूँ। पीठ में हाथ रखे, सर पर हाथ रखे, 5–10 मिनट बात करने के बाद वो चले गए।

3. अभी एक महीना पहले एक गुरूभाई के दिमाग ने काम करना बन्द कर दिया। उन्हें हॉस्पिटल ले जाया गया, वो मरते मरते बचे। ठीक होने पर वो रोने लगे कि गुरूजी मैं आपको याद नहीं कर सका।

शरीर छूट जाता तो इसका कोई दुःख नहीं था, आपको याद नहीं कर पाया इसका बहुत दुःख है।

आज्ञा चक्र से प्रकाश निकला। गुरूजी प्रकट हो गए और कहने लगे जब तुम्हारी तबियत खराब थी, तब भी मैं तुम्हारे साथ था, हॉस्पिटल गये और वापस आये तब भी मैं तुम्हारे साथ हूँ, और प्रत्येक शिष्य के साथ रहता हूँ, चिंता की कोई बात नहीं हैं।

श्री चरण पकड़कर रोने लगे। रात भर ये स्थिति बनी रही। दूसरे दिन उनके पुराने मित्र देखने आये बोले, तुम तो सीरियस थे मगर इतने सुंदर कैसे दिख रहे हो?

4. एक गुरूभाई को पिछले कुछ महीनों से अवतारी पुरूष व दिव्य शक्तियाँ जागृत अवस्था में दर्शन देते रहते हैं। गुरूजी भी जाग्रत अवस्था में दर्शन देते हैं और उनसे बातचीत होती है।

एक दो बार लगभग आधे घण्टे से ज्यादा बातचीत हुई। कुछ महीनों में प्रायः और अभी भी बीच बीच में बोलते रहते हैं, मांगों क्या मांगना है, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। गुरूजी की कृपा से आपके श्री चरणों में पड़ा रहूँ, यही प्रार्थना वो करते हैं।

कई बार वो गुरूजी से विनती करते हैं, गुरूजी अब ऐसा दर्शन देना बन्द कीजिये अब सभी में और सब जगह दर्शन दीजिये।

5. एक गुरूभाई को गुरूजी इस रूप में दर्शन दिए कि सूर्य से अद्‌भुत प्रकाश सारे विश्व में फैल रहा था, और उसके अंदर भी आ रहा था। दो बार गोल्डन लाइट में और एक बार अरूणोदय जैसे दर्शन गुरूजी दिए।

उनका कहना है, बहुत ही आनन्द देने वाला सौंधा सौंधा मद्धम मद्धम, वैसी ज्योति सूर्य का भी नहीं होता अद्‌भुत रौशनी थी । वो जब जब वो स्मरण में आता है, दूसरी दुनिया में ले जाता है, ये गुरूजी की परम् कृपा थी।

कुंडलिनी

अभ्यास करते–करते जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है तो इतनी उष्णता बढ़ जाती है कि आग लगा है शरीर में, ऐसा अनुभव होता है। जो सप्त धातु है उसको चाट जाती है। चाट्ने का अर्थ ये होता है, वो हमारे नाना जन्मों के किये गए वासना द्वारा कर्म राशि, जो सुख–दुःख क भोग हैं और शरीर में जो इंद्रियां है, मन, बुद्धि और विषय से विषाक्त हो करके जो हमारी इंद्रिया दूषित हो गई है और बार–बार उस ओर आती जाती है तो कुण्डलिनी शक्ति जगने के बाद ये स्थिति जब

आ जाती है तो शरीर का शोधन हो जाता है। एक–एक सेल में, एक–एक कोष में वो घूम जाती है, जितना मल है, उसको जलाकर भस्म कर देती है माने अपने विष से उन सबको साफ कर देती है। जनम–जनम के संस्कार जो है उन सब को दूर कर देती है। जब वो दूर हो जाते हैं, जब सब वो चाट लेती है, तब प्रसन्न हो करके, उपर जाकर खड़ी हो जाती है। कभी गिरता है, कभी बोलता है, कभी हंसता है, कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी पागल जैसा हो जाता है और कभी लकड़ी जैसा पड़ा रहता है। उसका शरीर है या नही ये भी बोध नही रहता, वह सत्य शुद्ध हो जाता है, तब जो खजाना सहस्त्रदल कहते है वहां जा के सीट बनाती है, माने वहां जा करके घर बन जाता है। वहां रहने पर नाना प्रकार की शक्तियां जो आप में भरी पड़ी है वो सारी शक्तियां, अपने आप काम करने लग जाती है।

अभी जो जलन बताया आपको ये क्यों हुई। ये है कुण्डलिनी शक्ति जो स्वयं का ज्ञान है वह अनेक जन्मों की वासनाओं से इतना दब गया है कि आत्मज्ञान हमारे पास रह नहीं गया खाली विषय ज्ञान मात्र हमारे पास हैं। उप वृक्क का हमारी नाभि से संबंध है उसमें एक द्रव्य है, जो दाह उतपन्न करता है, उसको मणिपुर कहा गया है, adrenal जो gland है हमारी वो गुप्त कार्य करती है, सारे अव्यवों पर प्रभाव पड़ता है, हमारी सोई हुई शक्ति जाग जाती है, हजारों जन्म से दबी हुई जब वो खड़ी होती है तो अंधेरा अज्ञान सब चाट जाती है, अपने असली रूप में आ जाती है। ये शरीर ज्योर्तिमय पिंड है सर्व ज्ञापिका हो जाती है।

यह तत्व की बात है, यह मैं बोलता नही हूं, बड़ा ही रहस्यमय है। ब्रम्हचर्य मुख्य है। कलियुग में अब कोई ब्रम्हचारी नही है, सबके कपड़े गीले होते हैं। अभ्यास के द्वारा उसको ही उपर चढाना है, उसी का अनुसंधान करना है, उसी का अभ्यास करना है। आज जो नाक के द्वारा सांस लेते हो उसे सुष्मना द्वारा लेना है। यह अभ्यास है, यह गुप्त है, रस को ही उपर ले जाना है, उपर ले जाकर फैलाना है। दिन भर राम–राम करते है और रात को उसको बहा देते हैं, आज इस गुप्त को खोल दिया जिसका मन आत्म तत्व में लीन है, वह ब्रम्हचारी है।

।। श्री गुरूदेव।।

अनहोनी होती नहीं, तू क्यों हुआ उदास।
होनी भी टल पायेगी, रख गुरू में विश्वास।।
जितने आये कष्ट सब, कर लेना मंजूर।
लेकिन गुरू के द्वार से, कभी न होना दूर।।
बिना गुरू के तर सका, हुआ न कोई शूर।
फैल रहा चारो तरफ, मेरे गुरू का नूर।।
गुरू चरणों में शिष्य के, दुःख कट जाते आप।
पास न उसके आ सके, जग के तीनों ताप।।
अपने गुरू के प्रीत जो, करता है निष्काम।
गुरू चरणों में ही बसे, उसके चारों धाम।।
जितने भी तू कष्ट दे, सब मुझको स्वीकार।
लेकिन गुरू–सेवा विमुख, मत करना कर्तार।।

पूज्य गुरूजी का दिव्य रूप

(डॉ0 गिरीश पांडे, बिलासपुर, द्वारा दुर्ग में आयोजित पदार्पण दिवस दिनांक 06/10/2015 को प्रस्तुत)

दुर्ग वह स्थान है जहां इस आध्यात्मिक विभूति ने बहुत साल, गृहस्थ जीवन छोड़ने तक, बिताये। जब मेरा सम्पर्क उनसे सन 1967–68 में हुआ तब तक कुछ लोग उन्हें गुरूजी के सम्बोधन से संबोधित करना प्रारंभ कर चुके थे, भले ही वह संगीत शिक्षक के रूप में हो। अपना आध्यात्मिक व्यक्तित्व वे स्वयं छिपाया करते थे। पता नहीं क्यों उन्होंने इस विधा को मेरे सामने बड़े सहज रूप में प्रकट किया तथा उसे मुझे पूर्णरूप से उचित समय आने पर सिखाने का आश्वासन भी दिया, यह कहकर कि तुम्हें नही सिखाउंगा, पहले चिकित्सा शिक्षा पूर्ण कर लो। दुर्ग वह स्थान है जहां गुरूजी ने गृहस्थ धर्म का पूर्णरूपेण पालन करते हुये आध्यात्मिक अनुभवों की ऊंचाई को पाया हालांकि उस समय उनके सम्पर्क में रहने वाले स्थानीय निवास उनकी गहराई को मापने में असमर्थ रहे और एक साधारण व्यक्तित्व के रूप में उनसे व्यवहार करते रहे। अतः दैववश वे उनके सम्पर्ण को पूर्णलाभ नहीं ले पाये। दुर्ग वह स्थान है जहां परम पूज्य गुरूजी ने असामान्य अपमानों के क्षणों को सहा लेकिन उन्हें उजागर नहीं किया। गृहस्थ जीवन में दंशों को नीलकंठ की तरह पी कर निस्पृह रहे। अपमानजनक सामाजिक परिस्थितियों को हंसकर झेल लिया, आर्थिक विपन्नता को विनोद का विषय बना लिया। सभी अवस्थाओं में समत्व का भाव, ऐसी निर्लिप्तता, ऐसी उपेक्षा, ऐसा शांत भाव केवल उन जैसी विभूति में ही संभव था। ऐसे थे वे हमारे 'गुरूजी'। दुर्ग नगर साक्षी है कि एक योगी की आध्यात्मिक चेतना के प्रकटीकरण, विस्तार, प्रसार एवं प्रसारण का। परम पूज्य गुरूदेव को शत शत नमन।

वह मकान जिसकी ऊपरी मंजिल में गुरूजी रहते थे।

वासुदेव–सूक्तोक्ति

1. मैं शिष्य नहीं 'गुरू' बनाता हूं। सभी में गुरू बनने की क्षमता है मैं इस क्षमता का उरप्रेरक हूं, जिसे जो बनना है, बन ले।
2. मोक्ष इसी जन्म में हो सकता है दूसरा जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति का अभ्यास (तैयारी) होनी चाहिये।
3. (दोनों हाथों का करपात्र बनाकर) गुरूजी कहा करते थे – ''अपने सारे पाप मुझे दे दो, बदले में मुझसे मोक्ष ले लो''।
4. यदि देहपात के लिये तैयार हो तो इसी क्षण ईश्वर दिखा सकता हूं।
5. ''मेरे पास कुछ नहीं है। गुरूजी हमेशा अपने दोनों जेबों को उलटाकर विनोद में कहा करते थे – देखो मेरे पास कुछ भी नहीं है। तत्वज्ञ जानते हैं कि कुछ नहीं का अर्थ है श्छवजीपदहदमेश्श– अर्थात परम ज्ञान, सर्वोच्च सत्ता (नसजमउंजम)।

6. उनका कहना था कि व्यक्ति अपने अंतिम क्षण तक कुछ न कुछ सीखता है, ऐसा भाव होना चाहिये। सर्वज्ञता का भाव अहं को जन्म देगा। वेद वाक्य है ''जो यह कहता है, मैं जानता हूं वह नहीं जानता''। यह गुरूजी अक्सर कहा करते थे कि मैं अभी भी स्टूडेंट हूं।
7. ''संगीत के अथाह ज्ञान होने के कारण वे कहा करते थे कि यदि सही सुर लगाए जाएं तो एक रात में समाधी लग सकती है।''
8. क्यों?क्या?कैसे?ये ही प्रश्न सारे झगड़े की जड़ हैं, माया हैं, इनको छोड़ने का अभ्यास ही साधना है, ये छूटे कि मुक्ति मिली।
9. बड़ाई या कुबड़ाई छोड़ दो सतोगुण व्यापक होगा। कबीर याद करें। –''न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।''
10. एक राष्ट्रीय धार्मिक पत्रिका में अपनों से अपनी बातें नाम से अंतिम लेख आता है इसे सुनकर गुरूजी नेकहा – कौन अपना कौन पराया सभी अपने हैं।
11. मुख्य न्यायाधीश सेचर्चा के बीच में उन्होंने कहा कि ''क्या सभी संत एक प्रकार का झूठ बोलते हैं''?गुरूजी को बात पसंद आई वे अक्सर ईश्वरानुभूति के विषय पर चर्चा करते हुये प्रसंग का उल्लेख किया करते थे।
12. ''योग एक स्थिति है व्यायाम नहीं''। वे कहते थे, गीता में कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा ''योगस्थ कुरू कर्माणी'', योग में स्थित होकर कर्म करो।
13. ''तुलसी एड़ न छाड़िए जहं तहं एड़ बिकाय'' – भगवत प्राप्ति के लिये एड (जिद्द) आवश्यक है।
14. भगवत प्राप्ति के समय गुरू भी छूट जाता है, समुद्र में अकेले लीन होना पड़ता है, लेकिन वापस आने के बाद ''बलिहारी गुरू आपने गोविंद दियो बताय''।
15. ''पुरूषार्थ (सांसारिक कार्यों के लिये) पर पुरूषार्थ (ईश प्राप्ति के लिये) प्रमुख है भाग्य नहीं''। यदि परम पुरूषार्थ की महत्ता नहीं होती तो किसी की कुण्डलिनी का जागरण नहीं हो पाता।
16. सिद्धियां कचरा हैं, साधना के समय आती हैं, तब तुम उनसे कहो, मैं अपने गुरू को चाहता हूं तुम्हें नहीं।
17. चर्चा के समय किसी भागवताचार्य ने कहा – गिरीश गरीब है यदि पैसे वाला होता तो प्रसिद्ध चिकित्सक होता। गुरूजी ने भागवताचार्य को झिड़कते हुये कहा – गरीब गिरीश नहीं वह है जिसके पास तत्व ज्ञान नहीं, जिसे तत्व है वह अमीर से भी अमीर है। चाह गई चिंता गई मनवा बेपरवाह।जिनको कछु न चाहिये वे शाहन के शाह – रामबादशाह
18. ऋषि ऋण–उन्होंने कहा था मैंने अपने को सौंपा गया पूर्ण किया, मेरे पास जो कुछ है, दे दिया अपने जैसा बनाकर, मैं ऋषि ऋण से मुक्त हुआ।
19. तिनका किसी को पार लगा सकता है क्या?तिनके को पकड़ने के असफल प्रयत्न में डूबने

वाला बार बार हाथ पैर चलाता है और अनजाने में तैर कर बाहर निकल जाता है।

20. गुरू कृपा हो तो गधा–गधा भी रटोगे तो मुक्ति मिल जायेगी।
21. गुरूजी विनोद में कहा करते थे, जो विभक्त नहीं वो भक्त'', ईश्वर से सदा जुड़े रहना ही भक्ति है।
22. साधना पथ में हुये अनुभवों को सत्य मानो, शास्त्र में लिखे हुये अनुभवों द्वारा प्रमाणित करो।
23. कच्चे शिष्य अक्सर स्वार्थ सिद्ध न होने पर गुरूजी के पास आना छोड़ दिया करते थे। उनकी चर्चा करने पर वे कहा करते थे – ''मैं किसी को नहीं छोड़ता चाहे वे मुझे छोड़ दें''। सद्गुरू का शिष्य को छोड़ना शिष्य के लिये अत्यंत घातक सिद्ध हो सकता है।
24. कुण्डलिनी शक्ति मूल है, चाहे ज्ञानी हो, चाहे भक्त, शक्ति का जागरण होगा ही। लक्षण, स्वरूप, अनुभव में भिन्नता हो सकती है।
25. बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। करने से मिलता है तत्वज्ञान।करना तो खुद को ही पड़ेगा।
26. योगी 2 तरह के होते हैं आत्मक्रीड़ तथा आत्मरति। आत्मक्रीड अपनी मंडली के साथ लोक कल्याण हेतु कर्म करते हैं। आत्मरति अपनं में मगन, न किसी से लेना न किसी को देना।
27. गुरू अपनी कृपा से साधक के सामने आने वाले अवरोधों को हटा देता है ताकि साधक निर्बाध रूप से आत्मोन्नति करता रहे।
28. साधक को अल्पाहार लेना चाहिए। गरिष्ठ आहार से आलस्य बढ़ता है तथा साधना में विघ्न आता है।
29. यद्यपि शुद्धं लोक विरूद्धं न करणीय न आचरणीयं।।
    गुरूजी कहा करते थे लोक व्यवहार के विपरीत कार्य करना भले ही कितना भी शुद्ध हो उन्हें पसंद नहीं था।
30. यौन विषय पढ़ना, सुनना, स्पर्श करना, रस लेना, देखना, सुगन्ध ये सभी क्रियाएं यौन भावना को बढ़ाती है। इनसे साधक को बचना चाहिये।
31. ब्रम्हणि चरति इति ब्रम्हचारी – विशुद्ध ब्रम्हचारी वह है जो हमेशा ब्रम्ह भाव में रहता है।
32. जन्मना जायते शूद्रः
    ब्रम्हाणि जानति इति ब्राम्हणः।
    जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है, जो ब्रम्ह हो जान लेता है वही ब्राम्हण है, बाकि सब भां–भां करते हैं।
33. वेद के पुरूष सूक्त के विषय में वे कहा करते थे – तत् तिष्ठति दशांगुलम – अर्थात ब्रम्ह मस्तिष्क के दस अंगुल प्रमाण के बराबर की जगह में रहता है वही सहस्त्रार है।
34. गुरू शिष्य का संबंध विशुद्ध है चूंकि वह निः स्वार्थ होता है। बाकी सारे संबंध स्वार्थ पर आधारित हैं। शिष्य गुरू का धर्मपुत्र है – अतः निष्पाप है।

35. सद्गुरू को पहचानना अत्यंत कठिन है, उपर से यदि व गृहस्थ हो। गृहस्थ गुरू सदा अपनी पहचान छुपाकर रखता है, उसके प्रत्येक कार्य अत्यंत सहज होते हैं।
36. अक्सर लोग बहुश्रुत केशधारी गुरूओं से प्रीााावित हो दीक्षा लेते हैं। कारण यह कि उन्हें तत्व ज्ञान में कम प्रचार में ज्यादा रूचि हैं अहं तुष्टि का एक माध्यम है।
37. मैं पूर्ण मनुष्य बनना चाहता हूं देवता नहीं।
38. किसी साधक ने गुरूजी से पूछा – गुरूजी फलां–फलां साधक को आपने तत्वज्ञान दिया था। वे विवादास्पद हो गये हैं, क्या आप उनसे ज्ञान वापस लेंगे। गुरूजी ने हंसते हुये कहा – दी हुई चीज वापस ली जाती है क्या?मैं थूक कर चाटता नहीं हूं।
39. साधकों की कम संख्या के विषय में बोलते हुये गुरूजी कहा करते थे, आकाश में एक ही चंद्र काफी है अंधकार दूर करने के लिये, लाखों तारे छिटक भी जाये तो क्या।
40. मैं अपने साधना काल में केवल 3 ग्रंथ हमेशा अपने साथ रखता था – योग पांतजल, गीता एवं योग वशिष्ठ।
41. शिष्य की आत्मोन्नति के लिये कभी –कभी शिष्य के कर्म गुरू को भोगने पड़ते हैं।
42. सम धी बुद्धि का सम होना या आत्मा में समाहित होना ही समाधि है।
43. आध्यात्म विषय है आत्मज्ञान तत्व है।
44. आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा सब एक है। विद्वानउसे आलग– अलग नाम से पुकारते है। सत्य एक है, लोग उसे भिन्न भिन्न नामों से संबोधित करते हैं। श्राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव सब एक ही ईश्वर के स्वरूप हैं। आत्मज्ञान हुये बिना यह अनुभव में नहीं आता।
45. लोग बिना अनुभव के ज्ञान बघारा करते हैं, अनुभव के पश्चात ''काष्ठ मौन'' है। ईश्वर का एक नाम वेदों में काष्ठ मौन भी है।

    कबीर ने कहा है – शून्यतलक तक सब गये शून्य के आगे नाय।
    शून्य के आगे जो गये मंदमंद मुस्काय।।
46. जहां प्रेम वहां नेम नहीं। जहां नेम तहां प्रेम नहीं।। प्रेम नियमों से परे है। जहां नियम आये प्रेम खंडित हो जाता है। प्रेमानंद ही परम है। आनंद ब्रम्ह।
47. साधक आचरण से पहचाना जाता है वेश से नहीं। ज्यों ज्यों साधना परिपक्व होती है आचरण में शुद्धता आती जाती है।
48. यज्ञोपवीत वाह्य प्रतीक है। असली व्रत अंदर होता हैं, असली ब्राम्हण ''ऋज्वी'' होता है (जिसने कुंडलिनी जागरण किया हो तब वह तथा उसकी कुण्डलिनी सरल सीधी हो जाती है।)
49. ''अहिंसा साधना है'', साधक के आसपास के क्षेत्र में आने वाला प्राणी कितना भी हिंसक हो शांत हो जाता है।

गुरूदेव के संस्मरण

1. छत्तीसगढ़ की अतिमान्य धार्मिक संस्थान के प्रमुख ने गुरूजी को व्यंग करते हुय कहा– ''आपको अन्दर जाने में क्या 'हिच' (अडचन) है गुरूजी ने तत्काल उत्तर दिया यह अन्दर–बाहर क्या है यही तो जानना है'' (अर्थात अन्दर–बाह दोनों एक है) धर्माचार निरूत्तर होकर तत्काल उस स्थान से जाते बने।

2. दुर्ग में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त आचार्य (अब भगवान) का सत्संग था सभा में गुरूजी भी निमंत्रित थे। कुछ समय पश्चात उस सभा से, गुरूजी ने जाने की आज्ञा चाही, आचार्य ने व्यंग से कहा– आपको भी काम है? गुरूजी ने तत्काल उत्तर दिया – महाशय आपने ठीक से सुना नहीं। मैंने कहा मुझे कुछ कार्य सौंपा गया है, उसे पूर्ण करने जाना है। अतः आज्ञा चाहता हूं। आचार्य निरूत्तर हुये। (सिद्धांत है परम सत्ता के द्वारा प्रत्येक जीव को कार्य सौंपा जाता है जिसे वह जाने अनजाने में करता है हम ईश्वर का ही कार्य करते हैं)।

3. दुर्ग में गुरूजी से परिचय होने के पश्चात वे बिना नागा रोज ''कप्तान'' (मेरी बड़ी बहन के स्वभावनुसार उन्होंने उन्होंने उनका नाम करण किया था) ऐसा कहते तथा सीढ़ियां चढ़ते हुये बहन के घर में एक छोटे से हाल में तख्त पर बैठ जाते, कभी–कभी लेट भी जाते थें। बिना पूछे उनके लिये चाय बन जाती। चाय पीते हुये इधर उधर की चर्चा कर कुछ समय बिता कर, सब्जी लाने जाता हूं, ऐसा कहकर चले जाते थे। उनके द्वारा की गई रहस्यमय बातें परिवार के लागों को कुद समझ मं नहीं आती थ, लेकिन स्नेहवश परिवार के व्यक्ति प्रत्येक संध्या उनके आने की प्रतीक्षा करते थे। मेरी एक बहन (उस समय अविवाहित) ने उनसे संगीत की शिक्षा ली थी तथा गुरूजी संगीत कक्षा हेतु उन्हें घर से लेने एवं पहुंचाने आने लगे थे। वनमाला (बहन) के अनुसार गुरूजी को संगीत का असाधारण ज्ञान था। कई रहस्यमय प्रक्रिया बताने के पश्चात एक दिन गुरूजी ने उनसे कहा– ''मैंने तुम्हें जितना संगीत मेरे पास था दे दिया, आज से तुम मेरी संगीत की पट्ट शिष्या हुई।'' उसके बाद धीरे–धीरे उन्होंने सिखाना कम करते हुये बंद भी कर दिया।

किसी व्यक्ति के यहां यदि रूकते थे तब वे उस कमरे की किसी भी वस्तु पर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। जो उन का सामान था वही तक सीमित रहते थे। ऐसे वे महीनों उस कमरे में व्यतीत करते थे। ऐसे वे महीनों उस कमरे में व्यतीत करते थे। उसी बीच मैं भी गुरूजी के संपर्क में आया। पूर्व से ही कुण्डलिनी के बारे में कुछ कुछ ज्ञात होने के कारण उनकी बातें मुझे समझ में आया करती थी। जिज्ञासा वश मैं उनसे इस विषय में चर्चा किया करता था। वे बड़ी सरलता से विषय को समझाया करते थे, कुछ भी नहीं छिपाया करते थे। कभी–कभी कपाल पर मालिश करते हुये कहते थे – ''चढ़ गई–चढ़ गई – ऐसी अवस्था में तखत पर लेटकर थोड़ा आराम करते थे, अब उतर गई ऐसा कहते हुये पुनः उठकर बात करने लगते। परिवार जनों को उनका चढ़ना उतरना समझ में न आने के कारण उनके पीठ पीछे मजाक में उनकी नकल हंसी का कारण हुआ करती थी।

4. दुर्ग में गुरूजी टाकीज में चलचित्र देखने जाया करते थे। उस समय उनकी आंखों में थोड़ी रोशनी थी। सामने की सीट पर बैठकर चलचित्र का आनंद लेते थे तथा दूसरे दिन उस चलचित्र के बारे में हम लोगों सेचर्चा भी किया करते थे, विशेषतया संगीत की। गुरूजी की कुछ छिपाने की आदत नहीं थी। अपनी तथा अपने परिवार की, बाहर के लोगों का उनके ाथ किया गया व्यवहार, दुर्व्यवहार की चर्चा, बड़ी सूख्मता के ाथ करते तथा उसे समभाव से कैसे सहना है, इसे भी सिखाया करते थे। उनके मन में किसी के प्रति तनिक भी कटुता नहीं थी। हां भविष्य में व्यवहार के प्रति आगाह करने का भाव रहता था। बातों ही बातों में उसके सूत्र बता दिया करते थे।

5. मेरी पोस्टिंग निकुम, दुर्ग में थी। तब तक मैं अविवाहित था, गुरू जीसे दीक्षित हो चुका था। निकुम में गुरूजी मेरे पास काफी दिनों तक रहे। हम दोनों ज्यादातर तात्विक चर्चा करते थे। कभी कभी सांसारिक चर्चाओं का दौर प्रारीा हो जाता था। एक दिन गुरूजी ने कहा – मुझे रोज रात चोरी से खाने के स्वप्न आते हैं, तुम्हारी खाना बनाने वाली नौकरानी चार है, उसे हटा दो। नौकरानी बदल दी गई। स्वप्न आना भी बंद हो गये। बातों ही बातों में गुरूजी इतने प्रसन्न हो जाया करते थे कि वे नाचने लगते थे। उनका यह दुर्लभ रूप देखकर मुझे बड़ा आनंद आता।

6. मेरी साधना गुरूजी के निर्देशन में अनवरत चल रही थी। रोज–रोज नये–नये अनुभव, उन पर गुरूजी से चर्चा, चौबीस घंटे केसे बीत जाते, पता ही नहीं लगता। एक दिन रात्रि में साधना के समय मुझे एक विशेष अनुभव हुआ। मैंने गुरूजी से सुबह उठकर उसकी चर्चा की। गुरूजी ने तत्काल बात कटाते हुये, अरे यह सब बेकार है फंसना नहीं है। उसके बाद वह अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। अनुभव सत्य था इसकी पुष्टि बाद में हुई। गुरूजी और मैं सरकारी जीप में बैठकर दुर्ग एवं अन्य स्थान जाया करते, लेकिन वे अपने घर दुर्ग नहीं जाते थे।

7. गुरूजी अकेले में चर्चा के दौरान मुझे बातया करते थे कि कौन सा साधक किस स्थिति पर है, क्यों है, उसकी साधना का परिणाम क्या होगा, इस जन्म में उसमें क्या कमियां है, उसके पिछले जन्मों के कर्मों का क्या असर इस जन्म में पड़ रहा है, उनके पिछले जन्मों से किसका क्या संबंध है। हालांकि उन्होंने ज्योतिष को छोड दिया था लेकिन मुझे वे ज्योतिष की कुछ गूढ़ रहस्यों के बारे में बताया करते थे मेरे द्वारा दिखाई गई कुण्डली चक्र के माध्यम से। साथ ही यह भी कहते ज्योतिष–व्योतिष कुछ नहीं है। पुरूषार्थ ही सर्वोपरि है।

8. रेडियो से छेड़खानी करना उनका अतिप्रिय शगल था। एक पेंचिस लेकर रेडियो खोल कर बैठ जाते तथा उसकी ट्यूनिंग घंटों सेट किया करते। रात्रि में विभिन्न विदेशी भाषाओं क समाचार बड़ी तल्लीनता के सथ सुना करते तथा बाद में उन पर चर्चा किया करते थे। फलां ट्रांजिस्टर की आवाज मधुर कर्णप्रिय है, फलां की नहीं, इसका ाचर्चा में उललेख करते। उस समय उनका सांसारिक स्वरूप उभर कर सामने आता था। ''व्यवहार ही वेदांत है'' – इस की शिक्षा मुझे उनके ही क्रिया कलापों एवं सांसारिक उपदेशों से प्राप्त हुई।

9. उजली सफेद धोती तथा बंडी उनके प्रिय वस्त्र थे। सफेद कपड़ों पर दाग उन्हें पसंद नहीं था। आंखों से कम दिखने के बाद भी वे दाग देख लिय करते थे। कई बार मैंने उन्हें क्रीम कलर का कुर्ता पहनाया। वे उसे पहनकर बहुत प्रसन्न होते। सुधा के द्वारा उनके बालों में शेम्पू कर उन्हें स्टूल पर बैठाकर नहलाया जाता तथा उनकी कंघी की जाती। वे गुनगुनाते जाते और उनका श्रृंगार होते जाता। कभी–कभी मजाक में हम उनका कुछ ज्यादा ही श्रृंगार कर देते तो गुरूजी प्रसन्नता से मुस्कुरा देते और आर्शीवाद दिया करते थे। उन्होंने अपने कुछ कपड़े मेरे घर पर यह वह कह कर रख छोड़े थे कि यही मेरा घर है। ये कपड़े आज भी ज्यों के त्यों रखे हुए हैं।

10. एक बार गुरूजी ने एक रूपये का सिक्का निकाल कर मुझे देते हुए कहा – मैंने तेरे लिए सालों पहले से बचाकर रखा था, इसे रखे रहने। उसके बाद वे किसी भी पर्व पर उन पर भेंट किये गये रूपयों में से कुछ रूपये निकाल कर मुझे देते और कहते गिरीश, ये तेरा हिस्सा है, इसे रख। कई वर्षो तक यह सिलसिला चलता रहा। इसका रहस्य जानने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया। प्रायः वे हमसे भेंट लेना पसंद नहीं करते थे बल्कि घर से प्रस्थान करते वक्त सुधा को 5 – 10 का नोट देते हुए कहते थे, ''इन्हें रखों यह तुम्हारी बरकत है''।

11. गुरूजी का यह नियम था कि वे जिसके यहां निवास करते थे उस गृह स्वामी के अनुसार ही अपना व्यवाहार करते थे। यदि दूसरा कोई व्यक्ति उन्हें भोजन पर निमंत्रित करता तो वह गृह स्वामी की आज्ञा लेने की सलाह देते। उस निमंत्रण में गृह स्वामी के परिवार का सम्मिलित होना आवश्यक था। बिलासपुर में एक शिष्य परिवार के द्वारा उन्हें भोजन पर आंमत्रित किया गया। किसी कारणवश गुरूजी वहा भोजन करना पसंद नहीं कर रहे थे लेकिन आमंत्रित का अपमान न हो अतः वे हमारे साथ उनके घर गये तथा पेट भर भोजन किया। घर में वापस आते ही उन्होंने सुधा से कहा जल्दी से कुछ भोजन लाओ, बहुत भूख लगी है। सुधा ने आश्चर्य से पूछा– आप अभी तो भर पेट भोजन करके आ रहे है?इतने जल्दी भूख लग आई?गुरूजी ने मुस्कुराते हुए कहा – वो भोजन मैंने थोड़े ही किया है। तब उन्हें दुबारा ताजा भोजन परोसा गया, गुरूजी ने उसे भी भर पेट खाया।

12. रायपुर में गुरूजी अपने एक प्रिय डॉ. शिष्य के यहां निवास कर रहे थे। डॉ. साहब के किसी मित्र ने एक व्यक्ति को यह कह कर उनके यहां भेजा कि सज्जन सिद्ध पुरूष है तथा उनके हजारों भक्त है। कृपया उनके भोजन आवास की व्यवस्था अपने यहां ही करे। गुरूजी से पूछने पर उन्होंने कहा कि उन्हें रहने दिया जाये पर उक्त सज्जन को गुरूजी का परिचय न दें। कुछ ही दिनों में उक्त सज्जन के पास बहुत भीड़ इकट्ठी होने लगी, लोग अपनी समस्याओं की समाधान के लिए उनके पास आने लगे। गुरूजी अपने कमरे तक सीमित रहे। जैसा कि उनका स्वभाव था। अतिथि सज्जन अक्सर डॉ. साहब से प्रश्न किया करते कि उस कमरे में रहने वाले व्यक्ति कौन है? वें मेरे घर के बुर्जुग है, ऐसा कह डॉ. साहब उनकी बात को टाल दिया करते थे। एक दिन संध्या के समय

गुरूजी घर के उद्यान में अकेले बैठे थे, मौका देखकर सज्जन गुरूजी के पास आये और उन्हें अपना परिचय दिया। गुरूजी बोले आप जो भी हो, आपका कार्य उचित नहीं है। यह कर्ण–पिशाचिनी मृत्यु के उपरांत तुम्हें अपने साथ्ज्ञ ले जायेगी। सज्जन ने गुरूजी के चरणों में नतमस्तक होते हुए पूछा, गुरूजी मुझे इससे छुटकारा का उपाय बताएँ। गुरूजी ने उसे एक मंत्र बताते हुए कहा कि यदि तुम इसका जाप करते रहोगे तो इस प्रेत से तुम्हें छुटकारा मिल सकता है। सज्जन दूसरे दिन ही अपना बोरिया बिस्तर बाँध कर चुपचाप निकल गए। गुरूजी ने यह घटना मुझे सुनाई। मैंने उनसे पूछा ''गुरूजी उसकी मुक्ति हो पाएगी क्या?वह उस सिद्धी को त्याग सकेगा?उन्होंने कहा, नहीं मान–सम्मान, रूपये–पैसे का लोभ त्यागना सहज नहीं है। वह उस प्रक्रिया में फंसा रह कर अपना परलोक भी नष्ट कर लेगा। पश्चात हम विभिन्न सिद्धियों एवं उनके प्राप्त करने के तरीकों पर चर्चा करते रहे।

13. बिलासपुर में गुरूजी का प्रथम आगमन हुआ था। शिष्य की संख्या कम थी। जिस जगह उनका निवास था उन्हें अच्छी सुविधा उपलब्ध थी। कुछ दिनों पश्चात किसी कारणवश गुरूजी को वहाँ से हटना पड़ा एक अन्य शिष्य जिनके यहाँ सुविधा न्यूनतम थी, उन्हें अपने साथ ले गए। एक दिन गुरूजी ने मुझसे कहा, मुझे निवास बदलना है चूंकि वह शिष्य मेरा व्यवसायिक उपयोग करना चाहता है। वह चाता था कि वो ज्योतिष के ग्राहक ढूंढकर लाएगा तथा गुरूजी उनका भविष्य बताएँगे। उसके एवज में उन्हें आर्थिक लाभ होगा। गुरूजी ने कहा मैंने ज्योतिष को छोड़ दिया है, अब उसे अपनी आय का साधन नहीं बना सकता। शिष्य इस बात से क्रोधित हो गया, गुरूजी शांत रहे। उसी संध्या को एक बहुत ही सम्पन्न व्यक्ति गुरूजी के पास आए तथा उनसे अपने निवास पर रहने का अनुरोध किया। गुरूजी ने स्वीकृति दे। दी। उनका निवास स्थान गुरूजी के लायक सर्वसुविधा युक्त था तथा गृहस्वामी तथा उनका परिवार श्रद्धालु भी बहुत था। गुरूजी के वहाँ उक्त गृहस्वामी को कई चमत्कारिक अनुभव हुए।

14. गुरूजी के असाधारण व्यक्तितत्व एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर बिलासपुर रामकृष्ण मठ के कुद स्थायी न्यासी, जिनमें गुरूजी के शिष्य भी थे, ने विचार किया कि गुरूजी को मठ में स्थान दिया दिया जाय ताकि उनके आत्मज्ञान से ज्यादा से ज्यादा लोग लाभन्वित हों तथा मठ की मान्यता भी बढ़े। मठ के कलकत्ता स्थित उच्चाधिकारियों ने यह शर्त रखी कि गुरूजी वहाँ दीक्षा नहीं देंगे, लोगों को आध्यात्म में प्रेरित कर दीक्षा हेतु प्रधान मठ में भेज देंगे। गुरूजी ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और बात आई गई हो गई।

15. गुरूजी मानवीय संवेदनाओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे जो इस एक घटना से उजागर होता है। स्व. डा. देवरस (सीनियर) अस्वस्थ हुए तथा निदान हुआ कि उन्हें पेट का कैंसर है। डा. किरण देवरस (पुत्र) ने अपने पिता की अंतिम अवस्था देखकर गुरूजी से प्रार्थना की कि उनके लिए कुछ करें। सीनियर की अपने परिवार के प्रति बहुत आसक्ति थी लेकिन वे चाहते थे कि मृत्यु

के पहले उकनी आसक्ति समाप्त हो जाए ताकि उन्हें मुक्ति मिल सके। गुरूजी ने उनके सुपुत्र डा. किरण को बुलाकर एक यंत्र कागज में लिखवाया तथा उसे घर में पत्थर के नीचे दबा देने का निर्देश दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि सीनियर देवरस उस दिन से अकेले अपने कमरे में किसी अज्ञात व्यक्ति से बातें करते प्रतीत होने लगे। परिवार के व्यक्तियों का मानना था कि बीमारी के कारण उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया है तथा वे अपने आप से बातें करते हैं। जब डा. देवरस से प्रश्न किया गया कि आप एकांत में किससे बातें करते हैं तो उन्होंने सामने रखी खाली कुर्सी की तरफ इंगित करते हुए कहा, देखते नहीं गुरूजी यहाँ बैठे हुए हैं, मैं उन्हीं से बातें कर रहा हूँ, वे रोज यहाँ आते हैं और मुे ज्ञान देते हैं। परिजन यह सुन बड़े आश्चर्यचकित हुए लेकिन उन्होंने उनसे कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों उपरान्त डा. साहब की प्रवृत्ति परिवार के प्रति अनासक्ति पूर्ण हो गयी। अपने पौत्र को भी अपने पास आते देख (जिसे वे बहुत चाहते थे) कहते अब मुे इन सांसारिक बंधनों से दूर रखो। कुछ दिनों पश्चात उनका देहांत हुआ। परिजन एवं सम्बधी अत्यंत दुख के कारण विलाप करने लगे। गुरूजी भी संवेदना के आवेग में उनके साथ रोने लगे। यह गुरूजी की समानुभूति (म्उचंजील) भाव का उदाहरण था।

गुरूजी मर्यादाओं के पालन के प्रति अत्यंत सजग थे। उन्होंने एक घटना जो तेलहरा में घटी, मुझे बताई थी। हुआ यूँ कि गुरूजी किसी कार्यवश तेलहरा से बाहर गए हुए थे। चूंकि उनकी यह प्रसिद्धि थी कि साधु सन्यासियों एवं अतिथियों का अपनी सामर्थ के अनुसार सम्मान करते हैं, अतः भगवाधारी सन्यासी बिना अनुमति घर में प्रवेश कर निःसंकोच ही कमरे में आराम करते हुए गुरूजी की प्रतीक्षा करने लगे। गुरूजी जब बाहर से वापस आए तो उन्हें वहाँ की स्थिति देखकर बहुत बुरा लगा। उन बिन बुलाए मेहमानों से उन्होंने पूछा– आपने किसकी अनुमति से एक गृहस्थ के घर में प्रवेश किया? क्या आप लोगों को इतना भी ज्ञान नहीं कि सन्यास लेते समय आपने अपना पिडंदान किया था। अतः सन्यास नियम के अनुसार आप सब ''शव'' हो गए हैं। गृहस्थ शवों को अपवित्र मानते है। अब मुझे अपने घर को गंगाजल से पवित्र करना पड़ेगा जो मेरे कितना पीड़ादायी होगा, इसकी आपको कल्पना भी नहीं। अपनी मर्यादा का उल्लन्घन कर आपने जो अपराध किया है, वह अक्षम्य है। इतना सुनते ही सन्यासवेशी अपराध बोध से ग्रसित हो नतमस्तक हो बिना कुदे कहे वहाँ से चले गए। यह उनके मर्यादाओं के प्रति सम्मान का उदाहरण है।

16. ज्योतिष विद्या को त्यागने का क्या कारण था, इसके पीछे जो घटना थी, उन्होंने मुझसे उसका उल्लेख किया। तेलहरा में उनके ज्योतिष ज्ञान की प्रसिद्धि बढ़ गई थी। पास के शहर वाले भी उनके ज्ञान से प्रभावित थे। उनके परिचितों में एक व्यक्ति जो सट्टे का बहुत बड़ा खिलाड़ी था, बहुत दिनों से उनका उपयोग करना चाहता था। गुरूजी खेल ही खेल में पत्येक घंटे में बाजार उतार चढ़ाव का नम्बर बता दिया करते जो हमेशा सटीक होता था। सट्टेबाज व्यक्ति ने गुरूजी से एक समझौता किया कि आप मुझे सट्टे का नम्बर बताएँ, मैं उस पर दांव लगा दूंगा। जो भी

रकम उसमें मिलेगी हम आधा–आधा बांट लेंगे। गुरूजी ने गर्दिशी में होने के कारण हामी भर दी तथा उसे सट्टे का नम्बर बताया जो निशाने पर लगा। उक्त व्यक्ति ने 7 लाख रूपए दांव में जीते, लेकिन वह गुरूजी से किए गए वादे से मुकर गया। उस दिन से गुरूजी ने भी ज्योतिष विषय को तिलांजली दे दी और जीवन में कभी उस विद्या का उपयोग आर्थिक लाभ के लिये नहं किया।

गुरूजी ने शनैः शनै उन सारी विद्याओं का त्यागकर दिया था जो अकूत आय श्रोत हो सकते थे। वे कहते थे कि यदि मैं बना सकता हूँ, तो बिगाड़ भी सकता हूँ, लेकिन यह मेरा काम नहीं है। शिष्यों को अत्यंत आवश्यक होने या उन्हें कठिनाईयों से उबारना हो, तभी वे इनका प्रयोग करते तथा उससे लोगों को चमत्कारिक लाभ भी प्राप्त होता था। ऐसे गृहस्थ योगी हमारे परम पूज्य गुरूजी को हमारा शत् शत् नमन।। ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः।।

सद्गुरु की अनिवार्यता

श्री सद्गुरवे नमः। एक महान शक्ति सम्पन्न,महान योगी,निर्बीज समाधि तक पहुँचा हुआ आत्मस्थ गुरू, अपने शिष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत से अमृत की ओर, ले जाकर उसे शक्ति, शान्ति, प्रसन्नता और परमानन्द प्रदान करता है। उसे अनेक, अलौकिक, अकल्पनीय शक्तियों का अनुभव कराता है। शिष्य जितना अधिक गुरू के ध्यान मे अनुरक्त होता है, उतनी ही अधिक गुरूकृपा की किरण उसकी ओर प्रवाहित होती है। जब शिष्य पूरे मन से गुरू का ध्यान करता है, उसे तब शिष्य सचमुच यह अनुभव करता है, कि गुरू की ओर से उदात्त विचारों की तरंगे प्रवाहित हो रही है। गुरूकृपा से शिष्य आत्मस्थ हो जाता है, उसे जड़ चेतन का ज्ञान होने लगता है, इस संसार की रचना, रचनाकार का अस्तित्व समझ में आने लगता है। जैसे–जैसे साधना में प्रगति करता है उसे संसार में अस्तित्व का बोध होता है वह अपने आपको समझने लगता है। अपना रूप दिखायी देता है। जिसे हम आत्मा कहते हैं, यही आत्मबोध होता है। ये सारी क्रियाएं सद्गुरु के द्वारा ही क्रियान्वित होती है।

"बिन गुरू होइ न ज्ञान न होय विराग बिन"। जब तक साधक अपनी इन्द्रियाँ पर अधिकार नहीं करता तब तक उसे आत्मज्ञान नहीं होता है। इन्द्रियों द्वारा साधक का बाह्य जगत से सम्बन्ध होता है। इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी नहीं होने देती। लोभ, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, कामवासना आदि मनोविकार, जो जन्मजात हैं, साधक को बर्हिमुख बनाये रखते हैं। इससे उसे आत्मिक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। इनका दमन गुरु कृपा से ही सम्भव है। बहुत से साधक जन्म–जात सन्त होते हैं, कुछ इसी जन्म से साधना प्रारम्भ करते है। दोनों गुरु कृपा के बिना उच्च अवस्था को नहीं प्राप्त हो सकते। कुछ विरले ही होते हैं जो अपने आप उच्चतर अवस्था तक पहुँच जाते हैं। रामकृष्ण विवेकानन्द आदि महान साधक भी गुरू कृपा के ही कारण इतनी उच्च भूमिका प्राप्त कर सके। यदि विवेकानन्द को रामकृष्ण न मिले होते तो नरेन्द्र, विवेकानन्द न बन पाते। सन्त ज्ञानेश्वर आदि को भी गुरू की आवश्यकता पड़ी। भगवान श्री राम को भी गुरू की आवश्यकता पड़ी। गुरू अपनी साधना द्वारा ऐसी शक्तियों को अर्जित कर लेते हैं कि वे किसी भी

साधक को अध्यात्म के चरम शिखर तक ले जाते हैं। उनकी कृपा दृष्टि से ही साधक समाधिस्थ हो जाता है ।ईश्वर ने मानव की रचना इस प्रकार से की है कि वह चाहे अपने आप को मानव बना ले या दानव ।भगवान को भी अपनी विशेषकला दिखाने के लिए मनुष्य का ही रूप धारण करना पड़ता है। अन्य शरीर धारी जीवों की रचना इस प्रकार से नहीं हुई। अन्य जीव धारी अपनी सुरक्षा भर जानते है। वे अपनी सुरक्षा अंगों के द्वारा करते है, किसी अन्य उपकरण का उपयोग नहीं कर सकते हैं। केवल मानव है जो किसी भी प्रकार की शक्ति अर्जित कर सकता है। साधना द्वारा वह ईश्वर को भी प्राप्त कर लेता है। ईश्वर नाना रूप धारण कर मानव की सहायता करते हैं,उसे शक्ति देते हैं मार्ग बताते हैं।

सद्‌गुरू का ऐसा मानव शरीर है जिसमें अपार अलौकिक शक्तियाँ निहित होती हैं। वह सामान्य मानव नहीं हैं, वह ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। गुरू के माध्यम से ही ईश्वर अपनी प्राप्ति का मार्ग बताते हैं। हम पूजा गुरू जी के चरणों की करते हैं किन्तु उन चरणों से ही अपार शक्ति प्राप्त होती है ।अभी अप्रैल 2016 मे मैं गुरू जी के चरणों का ध्यान कर रहा था। पहले ध्यान में कृष्ण बाल रूप में दिखायी दिए, इसके बाद कृष्ण बालक रूप में गुरू जी के चरणों में दिखायी देने लगे। ध्यान अवस्था में ही मैं आश्चर्य में पड़ गया और सोचने लगा कि यह कृष्ण का दर्शन नहीं है। यह मन का भ्रम है, तत्काल मुझे बोध कराया गया कि गुरु चरणों की पूजा से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।किसी देवी देवता की पूजा से केवल शक्ति (देवी देवता) प्राप्त हो सकती है, किन्तु गुरू जी की पूजा–आराधना से समस्त शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। किसी योग्य गुरू के सानिध्य मे ध्यान किया गया तो अपार शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह ध्यान का प्रभाव है,मैं इसे सद्‌गुरू का प्रभाव मानता हूँ ।यदि सद्‌गुरु के अभाव में ध्यान किया जाय तो प्रभावकारी अनभूतियां नहीं प्राप्त तो सकतीं किन्तु जब सद्‌गुरु के सानिध्य में ध्यान किया जाय तो वे शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कुछ सद्‌गुरु सजीव हैं और वे भी मानव देह में हैं। मानव देह में रहते हुए शिष्यों का संरक्षण मार्गदर्शन कर रहे हैं। कुछ सद्‌गुरु मुक्त अवस्था में विचरण करते हुए मानव की सहायता कर रहे हैं। जब किसी साधक को आवश्यकता पड़ती है तब मानव देह धारण करके उसका मार्ग दर्शन करते हैं। वे किसी जीवित योग्य गुरू का पता बताकर उसके पास भेज देते हैं, सृष्टि की रचना विचित्र है, जो भी सोचा जाय, सब कुछ प्राप्त हो सकता है, केवल जिज्ञासा या लगाव दोनों चाहिये। गुरू सर्वत्र होता है, उसे काल– स्थान बाधित नहीं कर सकते। वह भूत व भविष्य का ज्ञाता होता है। भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को फिल्म के समान देखता है। उदाहरण के लिए वाल्मीकि जी श्रीराम के पैदा होने के पहले ही वाल्मीकि–रामायण की रचना कर चुके थे। रामकृष्ण परमहंस, नरेंद्र के जीवन में घटित होने वाली सम्पूर्ण घटनाओं का अवलोकन कर चुके थे। उनको मालूम था कि भविष्य मे नरेन्द्र ही एक ऐसा व्यक्ति है जो हमारे कार्य को कर सकता है। गुरू अपने सूक्ष्म शरीर से कहीं भी प्रगट हो सकते हैं। ऐसे कई महान गुरू हुए हैं जिन्होंने प्रगट होकर शिष्यों का मार्गदर्शन किया। ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य का जन्म प्रारब्ध भोग करने के लिए होता है। जब तक प्रारब्ध,रहता है तब तक वह मुक्त नहीं हो सकता ।जब किसी साधक की साधना पूर्ण नहीं होती, किसी कारण से उसकी मृत्यु हो जाती है या साधना अधूरी रह जाती तो वह पुनः जन्म लेता है, अपनी साधना आगे बढ़ाता है। इसीलिए कुछ साधक साधना में आगे रहते हैं, कुछ पीछे, जिसकी जैसी भूमि होती है, वैसी प्रगति।

साधक के मन में लगन, जिज्ञासा का होना आवश्यक है। यदि रूचि, लगन, जिज्ञासा का अभाव होगा तो सद्‌गुरू प्राप्त भी हो जायें तो उन पर उसका विश्वास ही नहीं होगा। जैसे हीरा न

पहचानने वाला व्यक्ति हीरे को कंकड़ समझ कर फेंक देगा, किन्तु हीरे की पहचान करने वाला जौहरी उसे हृदय से लगा लेगा। सच्चे गुरू जिज्ञासु शिष्य को ढूँढते रहते हैं। उन्हें मालूम होता है, उनको चाहने वाला शिष्य कहाँ हैं, उसे ढूँढ कर उसका मार्गदर्शन करते हैं।, बहुत से साधक होते हैं जिनको सद्गुरू प्राप्त हो जाते हैं। वह सद्गुरु को पहचान भी लेते हैं किन्तु आलस, प्रमाद, अनिच्छा, अविश्वास संशय, सन्देह होने के कारण साधना से दूर होकर और किसी दूसरे ढोंगी के चक्कर मे पड़ कर अपना सर्वस्व नष्ट कर देते हैं। आत्म–उद्वार की कामना वाले बहुत कम हैं,हजारों मे एक दो व्यक्ति ही आत्म–उद्वार चाहने वाले मिलेंगे। आज जितने भी व्यक्ति है सांसारिक सुख, वैभव, प्रतिष्ठा, पद, रोग मुक्ति, शारीरिक सौष्ठव प्राप्त करने के लिए ही किसी गुरू के पास या मठ, मजार में जाते हैं। वहाँ उनकी कामना पूरी होने तक भटकते रहते हैं।

साधना की उच्चावस्था मे पहुँचने के बाद साधक इच्छारहित हो जाता है। उसे किसी, पद, प्रशंसा, धन, वैभव की कामना नहीं रहती, वह आत्मस्थ हो जाता है। अपने अन्दर रहते हुए अपार सुख प्राप्त करता रहता है, इस लिए वह लोगों के बीच में नहीं आता। ऐसे साधकों (सन्तों)को आत्मरति सन्त कहते हैं। दूसरे वे होते हैं जिन्हें आत्मक्रीड कहते हैं । वे हमेशा आज्ञा चक्र में रहते हैं उनके पास दूसरों को देने को लिए अपार शक्ति होती है। "धर्म किए धन न घटे,जो सहाय रघुवीर", ऐसे साधकों की अपनी शक्ति होती है। वे आर्शीवाद देते रहते हैं परन्तु उनकी शक्ति क्षीण नहीं होती। गुरू अपनी शक्ति शिष्य को देते हैं और शिष्य उससे आत्मस्थ हो जाता है, तब दोनो की सम्मिलित शक्ति से कार्य होने लगता है। आत्मक्रीड संत बहुत कम होते हैं, देने की क्षमता बहुत कम लोगों में होती है, आत्मक्रीड संत बिना दिए रह ही नहीं सकते। हमारे गुरू जी आत्मक्रीड संत हैं। शरीर के अन्तिम दिनों में रीवा व भोपाल के कार्यक्रमों के समय इतना अधिक शारीरिक कष्ट था कि हिलना–डुलना भी मुश्किल था। फिर भी कार्यक्रम मे भाग लिए और सैकड़ो लोगो को दीक्षा दिए।

दीक्षा देना गुरू के लिए एक कष्टसाध्य कार्य है। शिष्य को दीक्षा देने के पहले गुरू शिष्य के पापों को अपने ऊपर लेते हैं, उसे शुद्ध करते हैं, फिर दीक्षा देकर उस के ऊपर संस्कार डालते हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं, उसके पापों को ढोते हैं। इसलिए सद्गुरू को अनेक शारीरिक कष्ट को झेलने पड़ते हैं। जितने भी महान गुरू हुए हैं, उन्हें किसी न किसी प्रकार शारीरिक कष्ट अवश्य हुआ है। अपने गुरू जी को कितना शारीरिक कष्ट था? गुरू अपने शारीरिक कष्ट को सहते हुए शिष्य को पार लगाते हैं। यदि शिष्य आध्यात्मिक मार्ग पर आगे निकलता है तो वह कष्ट कम होता है, नहीं तो उसका भोग गुरू करते रहते हैं, गुरू शिष्य के योग क्षेम का भार अपने ऊपर लेते हैं। शिष्य सोचता है कि जो हमें प्राप्त हो रहा है, वह हमारे कारण प्राप्त हो रहा है। इस रहस्य को गुरू जी कई बार बताए थे। माँ शारदा भी इस रहस्य को प्रकट करती थीं। उनका कहना था कि श्रीरामकृष्ण का शरीर इतना पवित्र था कि कोई रोग उन्हें छू भी नहीं सकता था, यह सब शिष्यो का लिया हुआ है।

हमारे परम पूज्य गुरू जी शुद्ध, बुद्ध, मुक्त थे। गुरूजी का जीवन सम्पूर्ण रूप से आडम्बर हीन था। साधना इस प्रकार से करते थे कि घर के आदमी नहीं जान पाते थे। गुरू जी तेल्हारा (महाराष्ट्र) में करीब 20 वर्ष और दुर्ग (छ0ग0) मे 14 वर्षों से निवास किए। उनका वहाँ अनवरत अभ्यास चलता रहा किन्तु थोड़े से लोग ही, जो उनके घनिष्ठ मित्र थे, गुरू जी के विषय में जानते थे। तेल्हारा में तो शायद ही कोई गुरू जी को जानने वाला था जब कि उस समय भी गुरू जी साधना मे विशेष उन्नति कर चुके थे। गुरू जी के जीवन से यह स्पष्ट होता है कि अभाव व परिवार

किसी की साधना मे बाधा नहीं पहुँचा सकते। गुरू जी परिवार छोड़कर जब जन कल्याण के लिए निकले,तभी गुरू जी को कुछ लोग ही शक्ति सम्पन्न योगी के रूप मे समझ पाए। फिर भी अधिकांश लोग पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और सिद्वियाँ प्राप्त करने के लिए ही गुरू जी की शरण में आए। जब तक मुंगेली में आश्रम नहीं बन गया, तब तक गुरू जी भ्रमण में रहते थे।

गुरूजी के शिष्यों का अनुभव पढ़ने या सुनने से स्पष्ट हो सकता है कि दीक्षा लेने के बाद लोगों की कुण्डलिनी जागृत हो जाती थी । लोगों को आत्म ज्योति का दर्शन होने लगता था। अनेकों दिव्य शक्तियों का दर्शन होता था। मन में अपार शांति छा जाती थी, कई लोगों के बिगड़े काम बन जाते थे। आपत्ति आने पर गुरू जी प्रगट हो जाते हैं। लोगों को सद्बुद्धि व मार्ग दर्शन मिलता है। गुरू जी का कोई शिष्य पृथ्वी के चाहे जिस भाग में रहता हो, दुख–आपत्ति आने पर गुरू जी को पुकारता है एवं गुरू जी उसको उसी क्षण सशरीर सहायता करते हैं। गुरू जी भूत भविष्य को वर्तमान के रूप मे ही देखते थे। गुरू जी काल व स्थान के अनुसार बँधे नहीं थे। अनेक शिष्य जब आवाहन कर सद्गुरू को पुकारे तो गुरू जी कई सौ किलो मीटर दूर से आकर उन शिष्यों पर कृपा किए। गुरू जी के सामने सभी शिष्य–शिष्या बराबर थे, चाहे अमीर हो, या गरीब हो, किसी भी जाति, धर्म का हो । गुरूजी व्यवहार में छोटे, बड़े का ध्यान रखते थे। अपनी वाणी से कभी किसी को अपमानित नहीं करते थे। गुरू जी हमेशा ध्यानस्थ रहते थे। गहरे ध्यान में न चले जायें इसलिए लोगों से बातें करते रहते थे। यदि कोई पास में न रहे तो कोई न कोई मानसिक कार्य करते थे जिससे मन व्यस्त रहे । सभी धर्मों की साधना जानते थे। कुरान–बाइबिल के रहस्य ऐसे व्यक्त करते थे कि मानो इसी धर्म के धर्म गुरू हों। गुरू जी कभी किसी धर्म की बुराई नहीं करते थे। उनका कहना था कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक है, केवल ऊपरी पहनावा रीति, रिवाज, पूजा पद्धति, भाषा, खान पान में अन्तर है। आत्मा सभी धर्म की एक है, सभी धर्मों में बहुत अच्छे, फकीर, साधक, योगी हुए हैं। उनकी तपस्या, इन्द्रिय निग्रह, जीवों से प्रेम, त्याग, बलिदान, सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास गरीबों, अपाहिजों की सेवा भाव एक समान है। धार्मिक उन्माद वेलोग फैलाते हैं जिनको धर्म मालूम नहीं है। गुरूजी के शरीर त्याग के बाद भी अनेक साधक गुरू जी को उसी रूप में दर्शन किए है। गुरू जी की वाणी सुनते हैं। गुरू जी लोगों की सहायता करते हैं। आपत्ति विपत्ति के समय अलौकिक रूप से अथवा प्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं। गुरू जी सर्व व्यापक हैं, एक ही समय अलग अलग स्थानों से अलग अलग लोग पुकारते हैं,उन सबकी सहायता एक साथ करते हैं। गुरू जी की एक शिष्या अमेरिका मे रहती है । वह अमेरिका मे गुरू जी का ध्यान की। उसे अमेरिका मे गुरू जी आश्वासन दिए कि मैं तुम्हारे साथ हूं। ऐसे ही एक साधिका इंग्लैंड मे रहती है, उसे गुरू जी दर्शन देते हैं। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं। आज अनेक आलसी, प्रमादी, अहंकारी, अविश्वासी गुरूजी पर आस्था न रखने वाले लोगों का कहना है कि गुरू जी हमको दर्शन नहीं देते, हमारी प्रगति नहीं हो रही है। वे दिनों दिन दूर होते जा रहे हैं। ऐसे लोग यह नहीं सोचते कि हमारी आस्था कितनी कम हो रही है। हम गुरू जी से दूर होते जा रहे हैं। तुलसीदासजी ने कहा है– "प्रेम से प्रगट होहि मैं" – साधक जितने अधिक मनोयोग से आराधना करता है, उसी अनुपात में उस पर कृपा बरसेगी। आज हम देख रहे हैं कि ऐसे अनेके व्यक्ति हैं जो गुरूजी से दीक्षित नहीं हैं। वे गुरू जी की आराधना करते हैं, उनकी सहायता हो रही है। बहुत से दीक्षित व्यक्ति गुरूजी से दूर होते जा रहे हैं। यह सब आस्था व प्रेम का विषय है।

गुरूप्रसाद पाण्डेय, शहडोल

शंका – समाधान

पिछले वर्ष 2015 के उद्बोधन में यह उल्लेख हुआ कि परम पूज्य गुरूजी से दीक्षित शिष्य क्या किसी अन्य को सद्गुरू मान सकते हैं क्या?

इस प्रश्न के समाधान हेतु यह समझना होगा कि प्रमाणिक सद्गुरू कौन हो सकता है। परम पूज्य गुरूजी ने स्वयं बताया है कि दीक्षा देने वाले को आत्मबोध व शरीर बोध होना आवश्यक है, तभी वह दीक्षा देने का अधिकारी है। परम पूज्य गुरूजी के व्यक्तित्व व जीवन यात्रा से स्पष्ट होता है कि जन्म स्थान जार्ज टाऊन दक्षिण अमेरिका में बाल्यकाल में दिव्य लीला कर 11 वर्ष की आयु में स्वर्गभूमि भारत में सत्य की खोज हेतु 5 अक्टूबर 1919 को पदार्पण के दिन ही ''महाकाली'' ने दर्शन देकर उनका स्वागत किया। यहाँ जीवन भर निस्पृह रहते हुए उन्हें ''आत्मबोध – आत्मसाक्षात्कार'' हुआ। सभी देवी–देवताओं ने व भारत के महान संतो ने दर्शन दिये। परम पूज्य गुरुजी स्वयं वासुदेव कृष्ण रूप हैं। उनकी लीलाओं से स्पष्ट होता है कि जैसे द्वापर युग में अर्जुन को श्री कृष्ण भगवान ने सखा रूप में आत्मबोध कराया, उसी प्रकार गुरुजी के साथ ''श्री कृष्ण'' सखा रूप में रहे तथा उनकी हर इच्छा पूर्ण करते थे। वर्ष 1956 में तेलहारा में आषाढ़ एकादशी के दिन भगवान पंढरीनाथ स्वयं उनके साथ स्नान किये व भोजन किये। अतः यह स्पष्ट है कि परम पूज्य गुरूजी कृष्ण भावना से ओतप्रोत थे।

शैक्षिक ज्ञान, विद्वता, उच्चपद – ये सब जीवन की समस्याओं का हल करने में व्यर्थ हैं। इसमें सहायता हेतु एक मात्र ''गुरु'' जो शतप्रतिशत कृष्ण भावना भावित (प्रमाणिक गुरू) ही सहायक होते हैं। भगवान चैतन्य ने कहाः–किबा विप्र, किबा न्यासी, शुद्र केने नय। केई कृष्ण तत्व वेत्रा, सेई गुरू हय।। अर्थात कोई व्यक्ति चाहे विप्र (वैदिक ज्ञान में दक्ष) हो, निम्न जाति में जन्मा हो या संन्यासी हो, यदि वह कृष्ण के विज्ञान में दक्ष है तो वह यथार्थ प्रमाणिक गुरू है। वैदिक साहित्य में भी कहा है – षट्कर्म निपुणो विप्रो मंत्र–तंत्र विशारद। अवैषणवो गुरूर्न स्याद् वैष्णवः ... .गुरूः।। अर्थात – विद्वान ब्राम्हण भले ही वह सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान में पारंगत क्यों न हो, यदि वह कृष्ण भावनामृत में दक्ष नहीं है तो गुरू बनने का पात्र नहीं है। किंतु शूद्र यदि कृष्ण भक्त है तो गुरू बन सकता है (पदमपुराण) वेदों में कठोपनिषद् में तथा श्वेताश्वर उपनिषद् में कहा गया है कि श्री भगवान असंख्य जीवों के कर्म तथा कर्मफल के अनुसार उनकी अपनी–अपनी परिस्थितियों में पालक हैं, वही भगवान अंश (शक्ति) रूप में हर जीव के हृदय में वास कर रहे हैं। ऐसी शाश्वत आत्माओं के प्रति करूणा ही आत्म साक्षात्कार है।

आध्यात्मिक सद्गुरू :– स्वयं परम पूज्य गुरूजी के अनुसार जो योग साधना में निपुण हो, शास्त्र रूपी समुद्र का परगामी हो, समता रस के सागर में डूबा रहता हो, क्षमाधारी हो, इंद्रियों का दमन करने वाला हो, एकमात्र आत्म कल्याण से निष्ठापूर्वक रत् रहता हो, अपने शिष्यों को चित्त में संसर्ग मात्र से शुद्धि पैदा कर देता हो, जो स्वयं भवसागर तरता है, दूसरों को निस्वार्थ भाव से तारता है, जिन्हें आत्मज्ञान व शरीर ज्ञान का पूर्ण अनुभव है ऐसे जन सद्गुरु बनने के अधिकारी

होते है। श्रीकृष्ण ने गीता (7–3) में कहा है–

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यत्रतामपि सिद्धानां कश्चिन्माँ केत्तितत्वतः।।

कई हजार हजार मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होता है और इस तरह सिद्धि प्राप्त करने वालों में से बिरला ही कोई एक मुझे वास्तव में जान पाता है। तात्पर्य– मनुष्यों की विभिन्न कोटियाँ हैं और हजारों–लाखों मनुष्यों में से शायद बिरला ही यह जानना चाहता है कि ''आत्मा क्या है, शरीर क्या है, परमसत्य क्या है''? जो आत्म साक्षात्कार के पद तक उठते हैं, वे असाधारण होते हैं, ऐसा व्यक्ति करोड़ों में श्रेष्ठ है। परम पूज्य गुरूजी उनमें से एक हैं जिन्होंने कृष्ण को पहिचाना तथा उनका (कृष्ण) का सानिध्य प्राप्त किया। इस प्रकार परम पूज्य गुरूजी, ''कृष्ण'' के प्रामाणिक प्रतिनिधि है।

श्री भगवत् गीता तथा श्रीमद्भागवत का सार ही है कि हम जीवात्मा रूप में है। जीव का स्वरूप सेवक रूप में है जहाँ उसे ईश्वर या माया में से किसी एक की सेवा करना होता है। जीव मायाबद्ध है। माया जीव को फाँसती है। यहाँ जीव विकार ग्रस्त हो जाता है और वह अपने को ईश्वर मानने लगता है। परम पूज्य गुरूजी काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अंहकार आदि विकारों से मुक्त हैं। वस्तुतः माया से मुक्त होना ही शाश्वत आत्माओं के प्रति करूणा जगाती है। माया मुक्त होना ही कृष्ण रूपी सद्गुरू है। जब हम माया–मुक्त होने के लिए प्रमाणिक गुरू से दीक्षा रूपी बीजारोपण ग्रहण करते हैं तो शक्तिपात होता है अर्थात हम गुरू शक्ति से आत्मसाक्षात्कार के लिए अग्रसर होते हैं। सद्गुरू के मार्ग दर्शन में माया से लड़ते हैं। यह गुरूअंश भक्तिबीज है। ''भक्तिबीज पलटे नहीं जावे युग अनंत। ऊँच नीच घर अवरहे, रहे संत का संत।। अर्थात– प्रमाणिक गुरू का अंश (शक्ति) कई जन्मों तक या मोक्ष तक सतत अग्रसर रहेगा। स्पष्ट है कि पूज्य गुरूजी से दीक्षितजनों के अन्य सद्गुरू नहीं हो सकते। गुरूजी कहते थे–Light of God surrounds me, Love of God empowers me, Power of God protects me,Wherever I Go, God is with me. हरिओम् – हरिओम् – हरिओम्

सदैव श्रीगुरुचरणों में
रामदास, भोपाल

प्रेरक संदेश

(महर्षि अरविंद आश्रम पांडिचेरी की पत्रिका अग्निशिखा से संकलित)

- अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत ज्यादा सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो शुद्धि, प्रकाश और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो उन पर अपने विचार को बनाये रखना ज्यादा अच्छा है।

दिव्य प्रसंग

ऊँ श्री सद्गुरवे नमः। संगीत के माध्यम से भी परम तत्व का अनुभव किया जा सकता है, उस तक पहुंचा जा सकता है। इसी उद्देश्य से हारमोनियम लेकर गुरूजी ''सुर साधना'' में लग गये। कुछ दिनों के बाद उनका सुर श्री कृष्ण की बांसुरी के सुर से एकाकार हो गया। यों कहा जाय कि श्री कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि उन्हें सुनाई पड़ने लगी। जैसे श्री कृष्ण में प्रबल आकर्षण है वैसे ही उनकी बांसुरी की ध्वनि में भी है। जिसने भी उस ध्वनि को सुना है, आनंद की गहनतम गहराई में पहुँचकर समाधिस्थ हो गये। परम पूज्य गुरूजी की भी यही दशा हो गई। इसके पश्चात तो कोई भी गीत–संगीत की ध्वनि उनके कानों में पहुँचती थी तो सीधे श्रीकृष्ण की बंसी की ध्वनि से उस गीत–संगीत का एक भी सुर मिल जाता था और तो उन्हें श्री कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि ही सुनाई पड़ने लगती थी। उनको समाधिस्थ होने में समय नहीं लगता था। शरीर जड़वत हो जाता था। दीर्थ काल के बाद ही वे बाहर आ पाते थे। परम पूज्य श्री गुरूजी सतर्क होकर किसी भी गीत संगीत की ध्वनि उनके कानों तक न पहुँच पाये, इसके प्रबंध में लगे रहते थे। गुरू परिवार के जो भी लोग उनकी सेवा में रहते थे वे भी इस संबंध में सतर्क और सजग रहने लगे। समयांतर में किसी भी वस्तु की तालबद्ध ध्वनि से भी उसी प्रकार प्रभावित होने लगे थे। यह जानकारी गुरूपरिवार के सदस्यों को भी है।

संगीत के सिवाय एक और प्रबल विधा अंग ''नृत्य'' है। रायपुर मेडिकल कॉलेज में जब डॉ. सईदा दीदी पदस्थ थीं, तब उन्होंने बच्चियों की नृत्य शिक्षा हेतु एक नृत्य शिक्षक को नियत किया हुआ था। एक अवसर पर परम पूज्य गुरूजी प्रवास पर रायपुर पहुँचे और डॉ. सईदा दीदी के निवास पर रूक गये। नियत समय पर नृत्य शिक्षक ने नृत्य–प्रशिक्षण प्रारंभ किया, तब नृत्य संबंधी ताल और उसके ''बोल'', परम पूज्य गुरूजी ने सुना। गुरूजी के बुलाने पर नृत्य शिक्षक गुरूजी के चरणों में बैठ गये और तब उन्हें गुरूजी से मीठी झिड़की सुनने को मिली। परम पूज्य गुरूजी ने कहा कि शंकर जी ध्वंस के समय पर ताण्डव नृत्य करते हैं, आप जो सिखा रहे थे, उसी ताण्डव नृत्य के ''बोल'' के अंश थे। अरे भाई, पार्वती जी, माँ भवानी का लास्य सिखाईये जो वात्सल्य से पूर्ण एवं सृजनकारी है''। यह बात गुरूजी के ही श्री मुख से मुझे सुनने को मिली थी।

परम पूज्य गुरूजी से ही एक–दो बार सुनी है कि ''उधो जी, अब मैं माँ के ऋण से मुक्त हो गया। अब दुबारा माता के गर्भ में नहीं आऊंगा। अध्यात्मिकता की यह उच्चतम स्थिति है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने ऐसे सत्पुरूष की गीता के निम्न श्लोक द्वारा एक प्रकार से स्तुति की सीमा को स्पर्श करते हुये प्रशंसा की हैः–

बहुतां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्यां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

समस्त जितने भी ब्रम्हाण्ड उनकी सृष्टि और समस्त ऋष्टियों के बाहर परमतत्व वासुदेव कहलाता है, इसीलिए अर्जुन से श्री कृष्ण ने कहा कि ''वृष्णिवंशियों में मैं वासुदेव हूँ।'' ऊपर

उल्लिेखित गीता के श्लोक के अनुसार ज्ञानमार्ग का अवलम्बन करते हुये जिनका अंतिम जन्म होता है अर्थात माता के गर्भ में जिन्हे दोबारा नहीं आना पड़ता उन्हें भी ''सर्वभिति'' अर्थात हर दृष्टि से ''वासुदेव'' कहते हुये सुदर्लभ कहते हुये एक प्रकार से स्तुति (प्रशंसा) की है। अत्यंत दीर्घकाल के बाद ऐसे सत्पुरूष होते है। हमारे गुरूपरिवार के सदस्यों को स्मरण होगा कि परम पूज्य श्री गुरूजी बार–बार कहते थे कि'' यह संधि काल (अपना) है, इसका लाभ ले लीजिये।'' यह चरम स्थिति ही ''जानत तुमहि, तुमहि हो जाई'' का क्रियात्मक अनुवाद है। श्री मद्‌भागवत अनुसार भी भगवान ने कहा है कि ''ऐसे महात्मा के मैं पीछे–पीछे चलता हूँ ताकि उनकी चरण रज उड़ उड़ कर मेरे शरीर पर पड़ती रहे और, मेरा शरीर पवित्र हो जाये। एक बार परम पूज्य श्री गुरूजी ने कहा था, जिसे मैंने सुना है, कि ''मूल प्रकृति और ''पुरूष'' को मैंने एक होते हुये देखा है और उसी में समाहित हो गया''। यह है उस परमतत्व को जानने संबंधी दुर्लभ अनुभव। यही है ''जानत तुमहि, तुमहि होई जाई'' इसके बाद ही माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता और ऐसे सत्पुरूष ''वासुदेव'' हो जाते हैं। यह परमतत्व स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित है अर्थात ज्योति स्वरूप है। ''जगत प्रकाश्य, प्रकाशक रामू'' ।

उधोपुरी, बिलासपुर

पर्दापण दिवस समारोह, दुर्ग

पू. गुरुजी ने दुर्ग में लगभग 15 वर्ष व्यतीत किये। जीविका उपार्जन और गृहस्थ धर्म के पालन के साथ साथ आत्मबोध की अंतिम अवस्था प्राप्त कर यहीं से उन्होंने गृहस्थ जीवन छोड़ अपने परिवारजनों के कल्याण के लिये शेष भौतिक जीवन समर्पित कर दिया। इसलिए 5 अक्टूबर से 7 अक्टूबर 2015 तक यहां एक विशाल शादी हॉल एवं उद्यान में पदार्पण दिवस मनाया गया। कुछ पुराने शिष्यों का विश्वास है कि रायपुर में बहुत वर्षों पूर्व गुरुजी की भी ऐसी इच्छा थी।

दुर्ग के श्री प्रकाश मिश्र, श्री मोहन गोस्वामी, श्री गजानन वड्यालकर एवं रायपुर के श्री योगेश शर्मा आदि ने अत्यधिक लगन एवं परिश्रम के साथ इस कार्यक्रम को आयोजित किया। बिलासपुर, रायपुर, नागपुर, वर्धा, रीवा, शहडोल एवं भोपाल आदि अनेक शहरों से लगभग 300 परिवारजन कार्यक्रम में उपस्थित रहे। भोजन, आवास एवं वाहन आदि की उत्तम व्यवस्था थी। मुख्य हॉल बहुत बड़ा एवं व्यवस्थित था जिससे परिवारजनों को कार्यक्रम में बहुत आनंद आया। प्रातः एवं संध्या को पू. गुरुजी की आरती के उपरांत सामूहिक ध्यान किया गया तथा दिनभर परिवारजनों के अनुभव व संस्मरण का आदान प्रदान हुआ। गुरु बहनों द्वारा सुरीले भजन गाये गये। वरिष्ठ परिवारजन सर्वश्री उधोपुरी, गुरूप्रसाद पाण्डे, गजानंद वड्यालकर, श्रीमती पंधेर, डॉ. गिरीश पाण्डे, वीरचन्द्र जैन, विरेन्दं गिरी गोस्वामी आदि उपस्थित थे। आयोजकों, को हार्दिक बधाई।

शिष्यानुभव

(1) पू. गुरू जी के चरणों में दण्डवत प्रणाम। समझ में नहीं आ रहा है कहाँ से उनकी अलौकिक शक्तियों का वर्णन करूँ। मेरे में लेखन की योग्यता भी नहीं है।

जनवरी 1985 में मेरी दीक्षा बड़े अजीब ढंग से शहडोल में हुई। उस समय मैं कोतमा जिला शहडोल में पदस्थ थी। मेरी ननद श्रीमती चंदा मिश्रा शहडोल में थी। उनके घर पू.गुरूजी आते जाते थे। एक बार मेरी तबियत खराब हुई। मैं शहडोल आई। मेरी ननद ने कहा, भाभी दीक्षा ले लो। मैंने कहा आपके भाई देवास में हैं, उनसे पूछना पड़ेगा। शनिवार के दिन मैंने चि. मनीष (भान्जे) से कहा, रेलवे स्टेशन जाकर देखो मामा तो नहीं आए हैं। कोतमा के घर में ताला लगा है। वह गया और मामाजी को साथ ले आया। कितने चमत्कार की बात है। इसके पहले गुरूजी शहडोल अचानक आए। बहनजी के कहने पर बोले, मैं रीवा जा रहा हूँ, दो दिन बाद आकर दीक्षा दूँगा। वें आए, दीक्षा की तैयारी हुई, पति साथ में लेने वाले नहीं थे। पू. बाबूजी (श्री जानकी प्रसाद मिश्रा) इनसे बोले, जगदीश तुम यहीं बैठ जाओ। इन्होंने कहा, मैंने मुंह नहीं धोया है। पर उनके कहने पर ये बैठे। इस तरह जनवरी 1985 (संक्रांति के आस पास) में हमारी दीक्षा जोड़े से हुई। मेरे दिमाग में यह बात बैठी थी कि गुरू कान में फूंक देते है। पर ऐसा नहीं हुआ, उन्होंने जोर से ही मंत्र दिया। कहाँ मैं जिला शहडोल में, कहाँ ये देवास में। यह दीक्षा ही एक चमत्कार लगता है।

मेरी छोटी पुत्री के जन्म के समय मैंने माँ दुर्गा से मन्नत माँगी थी कि 10 साल तक मैं दुर्गा सप्तशती का उत्तर चरित्र पढ़ूँगी। समय नहीं मिल पाता था। उस समय मैं पुंजापुरा जिला देवास में पदस्थ थी (1988)। शासकीय व घर के कार्यो में व्यस्त रहने के कारण यह पाठ करना कठिन लग रहा था। मैंने पू. गुरूजी को पत्र लिखा, उन्होंने उत्तर दिया कि जो गुरूजी ने बोला है, वही करो, कोई अनिष्ट नहीं होगा। पाठ बंद कर दो। गुरूजी ने ईश्वर की ओर से आपको क्षमा कर दिया है। यह पंक्ति तो ईश्वर दूत ही लिख सकता है, साधारण मनुष्य नहीं।

बागली (जिला देवास) से श्री भटजीवाले के यहाँ गये, सूचना मिली थी कि पू. गुरूजी आए हुए हैं। 1.00 बजा होगा। मैं और मेरी ननद अन्नपूर्णा जी के मंदिर गये ताकि गुरूजी आराम कर सकें। लगभग 4.00 बजे हम लोग श्री भटजीवाले के यहां पहुंचे तो गुरूजी बोले तुम लोग कहाँ से आ रहे हो। हम लोगों ने कहा कि अन्नपूर्णा जी के मंदिर गये थे। बोले, उसी लिए आए थे, मैंने कहा, नहीं आपके दर्शन हेतु आए थे। पर सोचा आप आराम करेंगे, अतः मंदिर चले गये। बोले, अरे आते तो प्रसाद तो मिल जाता। फिर श्रीमती भटजीवाले से चाय बनवाई। थोड़ी सी पी के हम लोगों को प्रसाद के रूप में दी । ऐसे थे हमारे पू. गुरूजी। एक बार इन्दौर ही उनके दर्शन को गये। मैं एक गमछा ले गई थी। उसको पहन के बोले, बहुत लाती है, देती है। आश्रम भी पैसा भेजती है। तुम्हें ज्योति मिल गई। फिर एकाएक बोले लोग चोरी करवा लेंगे, डॉक्टर को पैसा देंगे, पर आश्रम 10 रू. भेजेंगे 11 रू. भेजेंगे। ऐसे ही एक बार इन्दौर में उनसे दो व्यक्ति मिलने को आए (नाम याद

नहीं)। उसमें से एक व्यक्ति चीलेपबे में चीण्क्‍ण था। पू. गुरूजी ने परिचय पूछा। विद्वान व्यक्ति ने दूसरे को संकोच से परिचय बताने को मना किया। दूसरे दिन पू.गुरूजी बोले, देखो उस व्यक्ति ने परिचय नहीं दिया। सब चुप थे, मैं बोल पड़ी, गुरूजी, उनको संकोच लगा होगा। बस फिर क्या था, उन्होंने डॉटना शुरू किया, बोले च्ण्ज्ञण मैं तुम्हें यहीं बिठा सकता हूँ। तुम हिल नहीं सकती हो। मैं तुम्हें जीवन भर याद रखूँगा। सब स्तब्ध थे। इसके अगले दिन हमने पूछकर पू. गुरूजी के पसन्द की भिंडी बनवाई। जैसे गुरूजी ने देखा, उनका मुंह जलने लगा। जब मैं विदा होने लगी, बोले डाँट भी खाती है, मुंह भी जलाती है। आर्शीवाद भी पाती है। धन्य धन्य हैं, आप गुरूजी। इन्दौर में भी एक बार मैं श्री भटजीवाले के यहाँ दो दिन रूकी थी। मैंने श्रीमती भटजीवाले से पूछा, उन्होंने पू. गुरूजी को पूछने को कहा। पू.गुरूजी बोले दो दिन रूक ली, दर्शन कर लिए, अब अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दो। फिर मैं लौट गई। पू. गुरूजी कितने सर्वज्ञ थे, एक घटना याद आ रही है। उस बार गुरू पूर्णिमा रायपुर में थी। पू. गुरूजी डॉ. आचार्य के यहॉ रूके थे। मैं झाँसी से दो दिन पहले छत्तीसगढ़ से रायपुर के लिए अपने छोटी बिटिया के साथ रवाना हुई। हम लोग 21 जूलाई 94 को रायपुर डॉ. आचार्य के यहां आए। भोजन का इन्तजाम 22 जुलाई शाम से था। मेरी तबियत खराब थी। डॉ. आचार्य के यहां भी किसी की तबियत खराब थी। पू. उर्मिला मामी ने कहा, मैं गुडिया को तो खाना खिला देती हूँ। आप अपना प्रबन्ध कर लेना। जहां रूकने की व्यवस्था थी, हम लोग वहां गये। रास्ते में ब्रेड ली, उसी को खा कर हम लोग सो गये। दूसरे दिन गुरूजी से मिलने गये, नाश्ता आदि किया। श्रीमती आचार्य पू. गुरूजी से पूछने गई कि आज खाने में क्या बनाएँ। उनका इतना पूछना था कि पू. गुरूजी बोलने लगे, सेवा धर्म बहुत कठिन है। मैं सबसे कहता हूँ, पहले से मत आओ, मैं कहां से भोजन कराऊँगा, मेरे बच्चे भूखे सो जाते हैं। मैं स्वयं परतंत्र हूं। मैं विस्मित रह गयी। उन्हें पता चल गया था कि मैं बिना भोजन के सो गई थी।

इसी तरह बागली में ही एक बाबूजी मेरे पति को बहुत पेरशान करते थे। गुरू पूर्णिमा वर्धा में थी। मेरी आदत थी कि मैं पूरे वर्ष की व्यथा–कथा गुरूजी को सुनाती थी। इसी संदर्भ में मैंने उनसे कहा कि मेरे पति फ्रेक्चर के कारण पड़े हैं। वह बाबू तंग करता है। बोलने लगे उसका सर्वनाश हो जाएगा। मैं डर गयी और विषय बदल दिया। सचमुच कुछ वर्षो बाद बाबूजी की पत्नी ने प्रेमी के साथ मिलकर उनकी हत्या करवा दी। कितने अर्न्तयामी थे हमारे पू.गुरूजी। ऐसे ही एक बार छात्रवृत्ति कांड में मेरे पति फंस गये थे, विभागीय कार्यवाही चल रही थी। गुरूजी बोले, निर्दोष छूट जाएगा, वहीं हुआ। मेरे पति पर जरा भी आंच नहीं आई।

सद्गुरू कृपा से प्राण बचे

(2) अक्टूबर 2015 में दीवाली के आस पास ग्वालियर स्थित मेरे घर एवं परामर्श कक्ष में साफ–सफाई चल रही थी। मैंने अपने और मरीज देखने के टेबल का स्थान बदला और अपनी कुर्सी पर बैठकर एकदम सामने लगी पूज्य गुरूजी की तस्वीर को प्रणाम कर उन्हें देख रहा था। कमरे के कोने में रखी पुरानी दवाईयों को भी साफ करने के लिए मैंने जैसे ही कुर्सी से उठकर अपना सिर दवाईयों की अलमारी की तरफ किया कि अचानक ऊपर चलता हुआ सीलिंग फैन टूटकर मेरी टेबल पर उसी जगह गिरा जहां मेरा सिर कुछ ही सैंकण्ड पहले था। एकदम तेज आवाज़ के साथ टेबल का पूरा सामान टूट कर बिखर गया। डर के मारे मेरे रोंगटे खड़े हो गये। यह पूज्य गुरूजी की असीम कृपा का ही फल था कि कुछ सैकण्डों के अन्तराल से मेरे प्राण बच गये। पूज्य गुरूजी का आर्शीवाद पूरे गुरू परिवार पर सदैव बना रहे, यही प्रार्थना उनसे करता हूँ।

डॉ. अरविन्द चौहान
भोपाल (पूर्व में ग्वालियर)

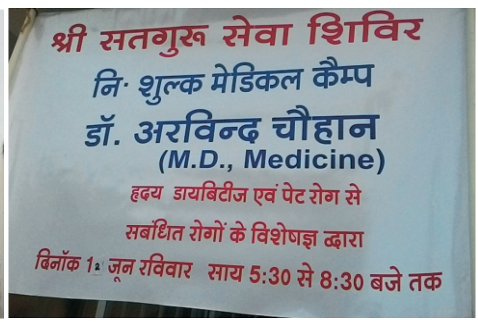

गुरू कृपा का स्मरण

पू. गुरू जी के चरणों में दंडवत् प्रणाम। जनवरी 1985 में मेरी दीक्षा बड़े अजीब ढंग से शहडोल में हुई। उस समय मैं कोतमा जिला शहडोल में पदस्थ थी। मेरी ननद श्रीमती चंदा मिश्रा शहडोल में थी। उनके घर पू.गुरूजी आते जाते थे। एक बार मेरी तबियत खराब हुई। मैं शहडोल आई। मेरी ननद ने कहा, भाभी दीक्षा ले लो। मैंने कहा आपके भाई देवास में हैं, उनसे पूछना पड़ेगा। शनिवार के दिन मैंने चि. मनीष (भान्जे) से कहा, रेलवे स्टेशन जाकर देखो मामा तो नहीं आए हैं। कोतमा के घर में ताला लगा है। वह गया और मामाजी को साथ ले आया। कितने चमत्कार की बात है। इसके पहले गुरूजी शहडोल अचानक आए। बहनजी के कहने पर बोले, मैं रीवा जा रहा हूँ, दो दिन बाद आकर दीक्षा दूँगा। वे आए, दीक्षा की तैयारी हुई, पति साथ में लेने वाले नहीं थे। पू. बाबूजी (श्री जानकी प्रसाद मिश्रा) इनसे बोले, जगदीश तुम यहीं बैठ जाओ। इन्होंने कहा, मैंने मुंह नहीं धोया है। पर उनके कहने पर ये बैठे। इस तरह जनवरी 1985 (संक्रांति के आस पास) में हमारी दीक्षा जोड़े से हुई। मेरे दिमाग में यह बात बैठी थी कि गुरू कान में फूंक देते है। पर ऐसा नहीं हुआ, उन्होंने जोर से ही मंत्र दिया। कहाँ मैं जिला शहडोल में, कहाँ ये देवास में। यह दीक्षा ही एक चमत्कार लगता है।

मेरी छोटी पुत्री के जन्म के समय मैंने माँ दुर्गा से मन्नत माँगी थी कि 10 साल तक मैं दुर्गा सप्तशती का उत्तर चरित्र पढ़ूँगी। समय नहीं मिल पाता था। उस समय मैं पुंजापुरा जिला देवास में पदस्थ थी (1988)। शासकीय व घर के कार्यो में व्यस्त रहने के कारण यह पाठ करना कठिन लग रहा था। मैंने पू. गुरूजी को पत्र लिखा, उन्होंने उत्तर दिया कि जो गुरूजी ने बोला है, वही करो, कोई अनिष्ट नहीं होगा। पाठ बंद कर दो। गुरूजी ने ईश्वर की ओर से आपको क्षमा कर दिया है। यह पंक्ति तो ईश्वर दूत ही लिख सकता है, साधारण मनुष्य नहीं।

बागली (जिला देवास) से श्री भटजीवाले के यहाँ गये, सूचना मिली थी कि पू. गुरूजी आए हुए हैं। 1.00 बजा होगा। मैं और मेरी ननद अन्नपूर्णा जी के मंदिर गये ताकि गुरूजी आराम कर सकें। लगभग 4.00 बजे हम लोग श्री भटजीवाले के यहां पहुंचे तो गुरूजी बोले, तुम लोग कहाँ से आ रहे हो। हम लोगों ने कहा कि अन्नपूर्णा जी के मंदिर गये थे। बोले, उसी लिए आए थे, मैंने कहा, नहीं आपके दर्शन हेतु आए थे। पर सोचा आप आराम करेंगे, अतः मंदिर चले गये। बोले, अरे आते तो प्रसाद तो मिल जाता। फिर श्रीमती भटजीवाले से चाय बनवाई। थोड़ी सी पी के हम लोगों को प्रसाद के रूप में दी । ऐसे थे हमारे पू. गुरूजी। एक बार इन्दौर ही उनके दर्शन को गये। मैं एक गमछा ले गई थी। उसको पहन के बोले, बहुत लाती है, देती है। आश्रम भी पैसा भेजती है। तुम्हें ज्योति मिल गई। फिर एकाएक बोले, लोग चोरी करवा लेंगे, डॉक्टर को पैसा देंगे, पर आश्रम 10 रू. भेजेंगे 11 रू. भेजेंगे। ऐसे ही एक बार इन्दौर में उनसे दो व्यक्ति मिलने को आए (नाम याद नहीं)। उसमें से एक व्यक्ति Physics में Ph.D. था। पू. गुरूजी ने परिचय पूछा। विद्वान व्यक्ति

ने दूसरे को संकोच से परिचय बताने को मना किया। दूसरे दिन पू.गुरूजी बोले, देखो उस व्यक्ति ने परिचय नहीं दिया। सब चुप थे, मैं बोल पड़ी, गुरूजी, उनको संकोच लगा होगा। बस फिर क्या था, उन्होंने डांटना शुरू किया, बोले P.K. मैं तुम्हें यहीं बिठा सकता हूं। तुम हिल नहीं सकती हो। मैं तुम्हें जीवन भर याद रखूँगा। सब स्तब्ध थे। इसके अगले दिन हमने पूछकर पू. गुरूजी के पसन्द की भिंडी बनवाई। जैसे गुरूजी ने खाया, उनका मुंह जलने लगा। जब मैं विदा होने लगी, बोले डाँट भी खाती है, मुंह भी जलाती है। आर्शीवाद भी पाती है। धन्य धन्य हैं, आप गुरूजी। इन्दौर में भी एक बार मैं श्री भटजीवाले के यहाँ दो दिन रूकी थी। मैंने श्रीमती भटजीवाले से पूछा, उन्होंने पू. गुरूजी को पूछने को कहा। पू.गुरूजी बोले, दो दिन रूक ली, दर्शन कर लिए, अब अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दो। फिर मैं लौट गई। पू. गुरूजी कितने सर्वज्ञ थे, एक घटना याद आ रही है। उस बार गुरू पूर्णिमा रायपुर में थी। पू. गुरूजी डॉ. आचार्य के यहां रूके थे। मैं झाँसी से दो दिन पहले छत्तीसगढ़ से रायपुर के लिए अपने छोटी बिटिया के साथ रवाना हुई। हम लोग 21 जुलाई 94 को रायपुर डॉ. आचार्य के यहां आए। भोजन का इन्तजाम 22 जुलाई शाम से था। मेरी तबियत खराब थी। डॉ. आचार्य के यहां भी किसी की तबियत खराब थी। पू. उर्मिला भाभी ने कहा, मैं गुडिया को तो खाना खिला देती हूॅ। आप अपना प्रबन्ध कर लेना। जहां रूकने की व्यवस्था थी, हम लोग वहां गये। रास्ते में ब्रेड ली, उसी को खा कर हम लोग सो गये। दूसरे दिन गुरूजी से मिलने गये, नाश्ता आदि किया। श्रीमती आचार्य पू. गुरूजी से पूछने गई कि आज खाने में क्या बनाएँ। उनका इतना पूछना था कि पू. गुरूजी बोलने लगे, सेवा धर्म बहुत कठिन है। मैं सबसे कहता हूं, पहले से मत आओ, मैं कहां से भोजन कराऊँगा, मेरे बच्चे भूखे सो जाते हैं। मैं स्वयं परतंत्र हूं। मैं विस्मित रह गयी। उन्हें पता चल गया था कि मैं बिना भोजन के सो गई थी।

इसी तरह बागली में ही एक बाबूजी मेरे पति को बहुत पेरशान करते थे। गुरू पूर्णिमा वर्धा में थी। मेरी आदत थी कि मैं पूरे वर्ष की व्यथा–कथा गुरूजी को सुनाती थी। इसी संदर्भ में मैंने उनसे कहा कि मेरे पति फ्रेक्चर के कारण पड़े हैं। वह बाबू तंग करता है। बोलने लगे उसका सर्वनाश हो जाएगा। मैं डर गयी और विषय बदल दिया। सचमुच कुछ वर्षो बाद बाबूजी की पत्नी ने प्रेमी के साथ मिलकर उनकी हत्या करवा दी। कितने अर्न्तयामी थे हमारे पू.गुरूजी। ऐसे ही एक बार छात्रवृत्ति कांड में मेरे पति फंस गये थे, विभागीय कार्यवाही चल रही थी। गुरूजी बोले, निर्दोष छूट जाएगा, वही हुआ। मेरे पति पर जरा भी आंच नहीं आई।

अक्सर गुरू पूर्णिमा के अवसर पर गुरूजी हमसे कहते थे कि कुछ मिला क्या?मैं कहती थी हाँ गुरूजी। कभी–कभी पूज्य गुरूजी आश्चर्य जनक बात करते थे। रिटायरमेंट (2005) के पहले मैंने एक बार श्री भटजीवाले के यहाँ उनसे पूछा था, गुरूजी मैं रिटायरमेंट के बाद कहाँ रहूँ? मेरे पति चाहते हैं, भतीजे के पास रहूँ क्योंकि मेरे पुत्र नहीं है, तीन लड़कियाँ हैं। पूज्य गुरूजी बोले, तुम्हें पेंशन मिलेगी? मैंने कहा, जी गुरूजी। बोले अकेले नौकर और पेंशन के सहारे रहना, फिर

सोच कर बोले, भतीजे–भान्जे चूस कर फेंक देंगे। थोड़ी देर बाद बोले, तुम्हारे पास सब लोग ऐसे आएँगे जैसे गुड़ के पास चींटियां। यह जीवन पुर्नजन्म है। पूज्य गुरूजी ने ही जीवन दान दिया है। 25–26 अगस्त 2010 की बात है। मैं सोई हुई थी शाम 4.00 बजे थे। एकाएक मुझे लगा कि पूरे शरीर में कोई भार नहीं है। वह खाली है। केवल गर्दन और सिर में खालीपन नहीं था। मैं चीख कर उठी, बगल में छोटी पुत्री को कहा, देखो क्या हो गया। कुछ सेकेण्डों बाद स्थिति सामान्य हुई। कुछ माह बाद मुझे Flu हुआ। मैंने यह घटना डाक्टर को बताई, वे हंसने लगे, बोले आप लौट आई, उतने समय आपके दिल की धड़कन बन्द हो गई थी। मैं स्तब्ध रह गई। इससे अधिक अलौकिक बातें क्या हो सकती हैं? इसी तरह 7 जुलाई 2011 को मेरे पति को 108 डिग्री बुखार चला गया। लेकिन गुरू कृपा से पानी की पट्टियाँ रखने से बुखार सामान्य हो गया। उनका भी यह नया जीवन है। एक बार बोले कि तुम्हारी दो लड़कियों की शादी 3 साल के भीतर हो जाएगी। पूज्य गुरूजी की यह बात सत्य निकली। 2012 में मैं बहुत परेशान थी, मेरी छोटी पुत्री की शादी नहीं लग रही थी। मैंने पूज्य गुरूजी के चरणों में एक आवेदन लगाया। 2013 में ही मेरी पुत्री की शादी हो गई। इसी तरह गुरू पूर्णिमा 1997 में मैंने उनसे भोपाल में पूछा, गुरूजी मैंने हाउसिंग बोर्ड के मकान हेतु आवेदन दिया है। बोले हो जाएगा, कोशिश करो। इन शब्दों का अर्थ बाद में समझ आया। मकान मिल गया, प्रयत्न पूर्वक उसमें रहने को मिला क्योंकि पति की इच्छा यहां रहने की नहीं थी। मेरे घर का नाम भी श्रीवासुदेव निवास रखा है। उन्हीं के कारण पिछले 16 साल से मैं यहां टिकी हुई हूँ। भोपाल में ही हम उनसे विदा लेने पहुँचे। मकान की बात होने के बाद बोलने लगे, मैं पुरूषोत्तम हूँ। थोथा पौधा नहीं हूँ। फिर एकाएक बोले, अच्छा अब आप जाइए। मार्च 1998 में पूज्य उर्मिला भाभी का खत आया कि पूज्य गुरूजी की हालत बहुत चिन्ताजनक है। दर्शन करना हो तो आकर जाओ। हम लोग मुँगेली पहुँचे, 10 तारीख को विदा लेने पहुँचे तो गुरूजी बोले ठहर जाओ। अंधेरा को जाने दो, उजाला आने दो। थोड़ी देर बाद फिर पूछा, तो चुप रहे। हम लोग धार लौट आए। 14 मार्च को स्तंभित करने वाली खबर मिली। वे इतने सर्वज्ञ थे।

प्रेम कुमारी
(श्रीमती पी.के. बाजपेयी)

श्री गुरू प्रशस्ति

(श्री गुरू प्रशस्ति पर यह रचना मराठी भाषा में है। अपने गुरू परिवार के ही एक ज्येष्ठ सदस्य की रचना है। पूज्य गुरूजी की महानता का इसमें बडा ही यथार्थ वर्णन किया गया है।)

''भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्। अर्थात–जिस योगी को गत जन्म में विदेह या प्रकृतिलय अवस्था प्राप्त हो गयी हो, उसे इस जन्म में जन्म से ही असंप्रज्ञात योग प्राप्त होता है।

'भव प्रत्ययों विदेह प्रकृंतिलयानाम', वदले पतंज्जलि – दर्शन लिहिता योगाचे
युगायुगानुन कुणि जन्ता ये – सिद्ध करया ऋषि–वचन ते मोलाचे ।।1।।
जन्मापासुन दिव्यास्था – आकर्षण ना भोगाचे, गुरूवाचुनी गुरूतर मर्गी – साधन होते त्यागाचे।
नियातिचक्रा शरणागत ते–मानवं या जगती–संयतिने त्या भेदून दावी–पुरूषार्थाची महती ।।2 ।।
विज्ञानाच्या परिभावेतून – योग सांगता स्वामी संभ्रम संवे प्रकाश उगवी – सुलभ साधना नामी।
आडंबर ना, बडेजाव ना–नाहीं प्रसिद्धि कोठे। अपुल्याज्सा शिष्य बनावा–ध्यये आपुल मोठे ।।3 ।।
हिमालयाची उंची अपुलीं – योगाभ्यासी देवा।
जीवन अपुले व्यक्तिचे ना– मानवनेचा ठेवा। (हातर मानवनेचा ठेवा)
प्रणाम अमुचा मंगलमय या – जन्मदिनीध्यावा। अखंड राहो छत्र आपुले – वंदित गुरूराया ।।4 ।।

महाराष्ट्र के संत और गुरुजी

''जय गुरुजी''। परम पूज्य गुरूजी का जन्म दक्षिण अमेरिका के ब्रिटिश ग्वाइना में एक चरित्र संपन्न हिंदु ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके दादा के घर में रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भगवत् गीता आदि पवित्र धर्म ग्रंथों का पठन पाठन नित्य का नियम था। इन महाकाव्यों के पठन में वासुदेव (गुरूजी) को गहन रूचि थी। भारत भूमि को पवित्र करने वाले श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा अनेकों महान ऋषियों की जीवनियों तथा महान कार्यों के वर्णन सुनकर पूज्य गुरूजी भाव विभोर होते थे। इन कथाओं ने उन्हें प्रेरणा दी। योगियों तथा ऋषियों की भांति आत्मिक अनुभवों को प्राप्त करने की अदम्य इच्छा उनके ह्दय की गहराईयों में बसकर अंकुरित होने लगी थी। इसी प्रकार महाकाव्यों में वर्णित भगवानों की, योगियों की भारत भूमि की भूमि यात्रा करने की तीव्र उत्कंठा गुरूजी के ह्रदय में जड़ें जमा चुकी थी। पूज्य गुरूजी की उम्र नौ वर्ष की थी। ऐसी सुकुमार अवस्था में श्रीमद्भागवत का अधूरा पठन पूरा करने का सुयोग प्राप्त हुआ। इस प्रशंसनीय कार्य ने उनके मन में भारत भूमि के दर्शन की उत्कट अभिलाषा को और भी तीव्र कर दिया।

भारत भूमि के दर्शन का सुअवसर उन्हें 5 अक्टूबर 1919 को प्राप्त हुआ। पूज्य गुरूजी ने 1920 की ग्रीष्म में विद्यालय में प्रवेश दिलाने का अपने पिता से अनुरोध किया, लेकिन उनके पिताजी ने इसे अस्वीकार कर दिया और उन्हें खेतों में हल चलाने तथा पशुधन की रखवाली करने

भेज दिया। उन्होंने बनारस जाकर संस्कृत अध्ययन की इच्छा भी प्रकट की, लेकिन उनके पिताजी ने इसे भी अस्वीकार करके गुरूजी की पिटाई की और बोले आपकी अध्ययन की इच्छा बनारस के पंडितों से नहीं अपितु खेतों में गाय, बैल ओर भैसों से पूरी होगी। (वासुदेव) गुरूजी उनके पिताजी के इस निर्णय बड़े दुःखी हो गये थे लेकिन उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में से भी मार्ग निकाला। गुरूजी खेतों में काम करते तथा पशुओं की रखवाली करते करते चुपके से खेतों में विश्रामसागर रामायण, महाभारत, गीता आदि पुस्तकें ले जाते थे और उनको पढ़कर किताबों के दिव्य प्रसंगों का वृक्ष की छाया में ध्यान करते थे।

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध संत स्वामी रामदासजी न केवल आध्यात्मिक उन्नति की चोटी पर थे अपितु उनका सामाजिक कार्य भी बहुत विशाल रूप ले चुका था। उन्होंने 'दासबोध' नाम का बडा ग्रंथ लिखा था और 'मनाचे श्लोक' नाम की उनकी छोटी पुस्तिका बहुत ही लोकप्रिय थी। परम पूज्य श्री गुरूजी के जीवन में, संयोग से कहो या ईश्वरी योजना से, स्वामी रामदासजी की जीवनी हाथ लग गई। पशुओं की रखवाली करते करते उन्होंने इस किताब को बडी उत्सुकता तथा लगन के साथ पढा। स्वामी रामदासजी विवाह मंडप से उठकर भाग गये थे क्योंकि वह सांसारिक बंधनों में नहीं बंधना चाहते थे। इस प्रसंग ने गुरूजी को सांसारिक प्रपंचों से अलग और स्वतंत्र रहने को प्रेरित किया। स्वामी रामदासजी के सदृश्य उच्च कोटि की आध्यात्मिक प्राप्ति की आकांक्षा उनके हृदय में जाग उठी। स्वामी रामदासजी महाराष्ट्र के संत होने पर भी उनके जीवन का गहरा प्रभाव गुरूजी के जीवन में हमें देखने को मिलता है। स्वामी रामदासजी ने कहा है ''केल्ययाने होत आहे रे, आधी केलिच पाहिजे''। गुरूजी कहते थे, इस पंक्ति ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। वो कहते थे आधी याने पहले, आश्रमांतर होने के पहले ही याने गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पहले ही इतना अभ्यास करो कि आपको आत्मसाक्षात्कार हो जाये। बाद में आप गृहस्थाश्रम स्वीकार कर सकते हो। गुरूजी कहते थे, इस संसाररूपी भव सागर से आप तर जाएंगे, यह रामदासजी ने हम सभी को वचन दिया है, लेकिन अभ्यास कब करना?आधी–करना माने आश्रमांतर के पहले, आप बह्मचारी हो उस शक्ति से आप आत्मसाक्षत्कार कर सकते हो। पूज्य गुरूजी ने एक तप माने 12 साल तपस्या करके आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के बाद ही अपने गृहस्थाश्रम को प्रारंभ किया था।

स्वामी रामदासजी ने कहा है 'एक ज्ञानाचे लक्षण। ज्ञान म्हणजे आत्मज्ञान। पहवे आपणासि आपण या नाव ज्ञान।।' पूज्य गुरूजी, प्रवचन में कहो या उद्‌बोधन करते समय, इस पंक्ति को अवश्य उदधृत करते थे और कहते थे अपने आपको जाना यही ज्ञान है, बाकी सारा अज्ञान है। सही मायने में अपने आको जानना यही जीविका है। इसे छोड़कर बाकी सभी उपजीविका है। ''पहावे आपणासि आपण'' यही निष्काम कर्म है। रामदासजी आगे कहते हैं, स्वस्वरूपानुसंधान – हेचि भक्ति, हेचि ज्ञान। गुरूजी कहते थे, स्वस्वरूपानुसंधान माने अपने आपको जानना, यही ज्ञान है, यही भक्ति है। जो संसार से विभक्त नहीं है, वही भक्त है।

आत्मसाक्षात्कार हेतु जो कर्म किया जाता है, वो निष्काम कर्म, जब धर्म का रूप धारण कर लेता है, तब दिव्यत्व को प्राप्त होता है। पूज्य गुरूजी रामदासजी के मनाचे श्लोक इस छोटी किताब की एक पंक्ति बोलते थे ''समर्थाची या सेवका वक्र पाहे, असा सर्व भूमंडळीकोण आहे।। समर्थ कौन है?गुरूजी पूछते थे और वही जवाब देते थे कि जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, जो अपनी स्वयं की मृत्यु को लांघकर उपर आ गया है, वह समर्थ है। समर्थ व्यक्ति की तरफ कोई भी वक्र दृष्टि से देख नहीं सकता। पूज्य गुरूजी कहते थे कि मुझे जो अंतिम अनुभूति हुई थी उसका प्रमाण मुझे रामदासजी के दासबोध ग्रंथ से प्राप्त हुआ। रामदासजी कहते हैं ''या कारणाने जितुके होईल तितुकेकरावे। सत्कर्माने मरून द्यावे भूंडळ।' सत्कर्म याने दिव्य ज्योति से (गुरूजी ने) सारा ब्रह्मांड भर दिया था। इस तरह महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत स्वामी रामदासजी से पूज्य गुरूजी को आध्यत्मिक लगाव था।

इसी प्रकार महाराष्ट्र के दूसरे संत श्री एकनाथ महाराज का मार्गदर्शन गुरूजी को प्राप्त था। पैठण ये शहर महाराष्ट्र में है। पूज्य गुरूजी अपने जीवनकाल में तीन बार पैठण गये थे। श्री बापूसाहेब देशपांडे तथा श्री भीमराव जोशी अकोला के रहने वाले थे और पूज्य गुरूजी के मित्र बन चुके थे। इन दोनों मित्रों का मत यही हुआ कि परम पवित्र गृहस्थ संत एकनाथ महाराज ही ऐसे हैं जो गुरूजी की ईश्वर खोज में सहायता कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने गुरूजी को पैठण जाकर संत एकनाथ महाराज की समाधि में शरण लेने का परामर्श दिया। पैठण नगर में महान गृहस्थ संत एकनाथ महाराज ने निवास किया था और इसी नगर में गोदावरी के तट पर लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व समाधिस्थ हुए थे। पूज्य गुरूजी ने इसी गोदावरी तट का स्थान साधना हेतु चयन किया। पूज्य गुरूजी संत एकनाथ महाराज जी से सहायता एवं मार्ग दर्शन प्राप्त करने हेतु दृढ़ संकल्प थे। गुरूजी ने रेतीले गोदावरी तट पर अपनी ध्यान साधना को आरंभ कर दिया। रात्रि को आरंभ किया हुआ ध्यान घंटों चलता, बहुधा कौवों के काँव–काँव तथा कोकिला के मधुर गान से नए प्रभात की सूचना देने तक।

संत एकनाथजी के दर्शन तथा मार्गदर्शन की प्रतीक्षा में एवं ध्यान साधना में 15 दिन के बाद अत्यंत प्रसन्न तथा दिव्य प्रकाश से घेरे हुये श्यामवर्ण के संत एकनाथजी गुरूजी की ध्यान साधना से अतिप्रसन्न होकर मार्गदर्शन करने हेतु उनके सन्मुख प्रगट हुए और बोले, यहां का तुम्हारा कार्य पूर्ण हो गया है। अब तुम अयोध्या जाओ, वहां तुम्हारी इच्छाओं की अवश्य पूर्ति होगी। यह सुनकर पूज्य गुरूजी अत्यधिक प्रसन्न हुए। महाराष्ट्र के संत एकनाथ महाराज, ये दूसरे संत हैं, जिन्होंने गुरूजी को मार्गदर्शन तथा आशीष भी दिया।

पूज्य गुरूजी के जीवन चरित्र पर जिनके अभंगों का प्रभाव था वह महाराष्ट्र के अत्यधिक प्रसिद्ध संत तुकाराम महाराज है। पूज्य गुरूजी साधना के विषय पर मार्गदर्शन करते समय कहते थे कि मैंने मेरी कई बार मृत्यु देखी है। इसका प्रमाण तुकाराम महाराज अपने अभंग में देते हैं। वह

कहते हैं, ''आपुले मरण पाहिल्या म्या डोळा। तो झाला सुखझोहळा अनुपम्य।। आंनदे दाटळी तिनही त्रिभुवने सर्वात्मकपणे भोग झाळा।।'' पूज्य गुरूजी हमेशा कहते थे, यह मेरी अनुभूति है, मैं मर मर के जिया हूँ। तुकाराम महाराज इसका प्रमाण हैं। गुरूजी कहते थे, तुकाराम महाराज जी ने कहा है ''तुका म्हणे लोचि संत, जो घात सहे अनंत।।'' गुरूजी कहते थे कि उनका जीवन भी अनेकों कष्टों से ही भरा था। पूज्य गुरूजी तुकाराम महाराज जी का अभंग स्पष्ट करते समय बताते थे, ''बैसोनि निवांत शुद्ध करी चित्त। तथा सुखा अंतपार नाही'', केवल आपको बैठना है, आपको विचार रहित होकर बैठना है। तब क्या होगा?''तथा सुखा अंतपार नाही'' आपको सुख माने आनंद की प्राप्ति होगी। यह अनुभूति मेरी है और इसका तुकाराम जी का अभंग साक्षी है। पूज्य गुरूजी कहते थे, मैं जैसा बोलता हूँ ,वैसा ही चलता हूँ और तुकाराम महाराज कहते हैं '' बोले तैसा चाले त्याची वंदावी पाउले।।'' इतना साम्य दोनों के कहने में था। गुरूजी कहते थे, तुकाराम महाराज योगी थे। तुकाराम महाराज का अभंग है ''जन्मोजन्मी आम्ही बहुपुण्य केले, म्हणूनी या विठ्ठले कृपा केली।। इस पर गुरूजी कहते थे, जन्मों–जन्मों के पुण्य का उदय जब होता है, तब ही सद्गुरू कहो या सतपुरूष की प्राप्ति होती है। तुकाराम महाराज और गुरूजी की अनुभूति में अद्भुत साम्यता थी। तुकाराम महाराज यह तीसरे संत है जिनका प्रभाव गुरूजी के जीवन चरित्र पर हुआ है।

पूजनीय, वंदनीय श्री ज्ञानेश्वरजी महाराष्ट्र के संत हैं, लेकिन सारे विश्व में वह ख्याति प्राप्त हैं। इन्होंने 21 साल की उम्र में ही जीवित समाधि ली थी। एक बार की घटना है, जो मुझे स्वयं श्री के. पत्की ने सुनाई थी, के. श्री पत्की जिन्होंने 'दिव्याम्बु निमज्जन' हिंदी जीवनी का मराठी अनुवाद किया है। पत्की जी पूज्य गुरूजी के साथ आळंदी गये थे जहाँ श्री ज्ञानेश्वर महाराज की संजीवन समाधि है। गुरूजी ने साथ आये लोगों को कहा कि आप समाधि मंदिर जाकर दर्शन कर आइये। लेकिन पत्की जी जिद करने लगे, गुरूजी आप भी दर्शन करने चलिये। ऐसा तीन बार हुआ। अंततः गुरूजी ने अधिकार वाणी से कहा, आप जिनके दर्शन के लिये आये हो, वह स्वयं ज्ञानेश्वरजी मेरे ही सामने खड़े हैं। लेकिन यह दर्शन केवल गुरूजी ही दिव्य चक्षु से देख रहे थे। श्री के. पत्की इसे समझ नहीं पाये और शिष्य की जिद को मानकर गुरूजी ज्ञानेश्वर जी की समाधि के दर्शन हेतु भीतर गये। वहां आश्चर्यजनक घटना घटी। समाधि मंदिर में जो लोग उपस्थित थे, उन्होंने गुरूजी को माला पहनाई, वस्त्र तथा नारियल देकर उनकी पूजा की। ऐसे अद्भुत प्रसंग पत्कीजी ने वर्धा में पांडे चाची के यहां सुनाया था।

श्री ज्ञानेश्वरजी का लिखा हुआ हरिपाठ नाम का लघुग्रंथ वारकरी संप्रदाय का प्राण है। इस ग्रंथ में एक अभंग है, ''देवाचिये द्वारी उभा क्षणभरी। तेणे मुक्ती चारी साधियेल्या।। हरि मुखे म्हणा हरि मुखे म्हणा। पुण्याची गणना कोण करी।। असोनि संसारी जिव्हे वेगु करी। वेदशास्त्र उभारी बाहया सदा।। ज्ञानदेव म्हणे व्यासाचिये खुणे। द्वारकेचे राणे पांडवा घटी।।

प्रसंग ऐसा है कि एक शिष्य ने पूज्य गुरूजी को संतवाङ्.मय पर पी.एच.डी. करने की आज्ञा मांगी। उस पर गुरूजी बोले, आपको उपाधि बढ़ाना है या कम करना है। शिष्य ने जवाब दिया, कम करना है। फिर यह डॉक्टरेट करना, यह क्या है? संतो की भाषा आप क्या जानोगे? वह अनुभूति का विषय है और ऊपर दिया ज्ञानेश्वरजी का अभंग बोलने लगे तथा सामने बैठे हुये श्री अशोक धर्माधिकारी आदि को पूछने लगे, बताओं देवाचिये द्वारी याने क्या?वो कौनसा द्वार है जिसको खोलने और क्षणभर वहाँ स्थिर होने के बाद आपको चारों मुक्ति साध्य होती है? पूज्य गुरूजी ने ज्ञानेश्वरजी के इस अभंग का अपनी आत्मानुभूति के बल पर इतना सुंदर और गहन अर्थ बताया कि सामने बैठे हुए शिष्यगण एक अलग आनंद का अनुभव करने लगे।

पूज्य गुरूजी द्वारा पांडे चाची के यहां दीक्षा चल रही थी। एक क्षण गुरूजी शांत और स्तब्ध हो गए और कहने लगे कि यदि किसी ने आपसे पूछा कि आपके गुरूजी का मार्ग कौन सा है?तो क्या बताओगे? उस समय कहना कि गुरूजी का ज्ञानेश्वरजी का कुण्डलिनी योग है और इसे ही पंथराज कहा जाता है। इसके जैसा पवित्र और श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। इतना प्रेम गुरूजी का श्री ज्ञानेश्वर महाराज के प्रति था। पूज्य गुरूजी को ज्ञानेश्वर महाराज जी का और एक अभंग बहुत प्रिय था। सौ. अनधा रानडे ने गुरूजी को इस अभंग को गाकर सुनाया था। वह इस प्रकार है, ''पांडुरंग कांती दिव्य तेज झळकती। रत्नतिलका प्रति शोभा।। गुरूजी पूछते थे, पांडुरंग याने क्या?पांडुरंग याने गोल्डन लाईट। इस अभंग में सारे साक्षात्कार का ही वर्णन है। इसलिए गुरूजी को यह अभंग बहुत प्रिय था।

मुक्ताबाई नाम की ज्ञानेश्वरजी की सबसे छोटी बहन थी। वह भी योगिनी थी। मुक्ताबाई ने भी ग्रंथों की रचना की है। एक जगह मुक्ताबाई अपनी ओवी में लिखती है, ''रात्रि दिसे दिवसामाजी ऊन। योगी यांची खूण योगी जाणे।। यह ओवी जब गुरूजी को बताई तो पूज्य गुरूजी अत्यधिक आनंदित हुए। फिर से बोलने को कहा और बोले, सच कहा है, मुक्ताबाई ने रात्रि दिसे दिवसामाजी ऊन। रात में हजारों सूर्य का प्रकाश हमारी आखों के सामने होता है। इसलिए तो मैं रात में सो नहीं सकता हूँ। बराबर कहा है, योगी लोग ही इसे जान सकते हैं क्योंकि उनकी स्वयं की अनुभूति होती है।

महाराष्ट्र में रामदास स्वामी, तुकाराम महाराज एकनाथ महाराज, नामदेव महाराज, चोखा महार, सावतामाली जनीबाई, मुक्ताबाई, निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर महाराज, गोरोबा कुंभार, कान्हो पात्रा, वेणाबाई, बहिणाबाई इत्यादि बहुत बड़ी संत परंपरा रही है। महाराष्ट्र के बहुत से संत गृहस्थ थे और साथ ही साथ आत्मानुभूति की चोटी पर थे। इसलिये गुरूजी का लंबा प्रवास व रहना महाराष्ट्र के तेल्हारा, अकोला, औरंगाबाद, जालना, पैठण, नागपुर तथा वर्धा शहरों में हुआ था। महाराष्ट्र के वर्धा तथा नागपुर में गुरूजी को चाहने वाले अनेक परिवार हैं। तेल्हारा गांव में होमियोपैथी दवा देने वाले श्री पंडितजी के नाम से लोकप्रियता उनको प्राप्त थी।

सच कहा जाये तो हमारे गुरूजी भेदाभेद से अतीत थे, परे थे। प्रांतीय भेद, भाषाओं का भेद तथा जातियों का भेद, अमीरों–गरीबों का भेद वह नहीं मानते थे। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'', इस भारतीय संस्कृति के बीज वाक्य पर उनकी दृढ़ श्रद्धा थी।

यह समय सन् 1939 के अन्तिम चरण का था। प.पू.श्रीगुरूजी को आत्मसाक्षात्कार हुआ था। उन्होंने स्वयं को सीमाहीन अथाह प्रकाश के सागर में डूबा पाया था। वह समाधि की उच्चतम अवस्था थी। पूज्य गुरूजी इसी भाव अवस्था में अकोला से निकल पड़े, कहां जाना है, यह कोई तय नहीं था। पूज्य गुरूजी ने एक दिन स्वयं को तेल्हारा में एक वृक्ष के नीचे पाया। इसे तेल्हारा गांव का भी भाग्य कहना होगा क्योंकि यहां आसपास गजानन महाराज जी का वास्तव्य रहा था। श्री गजानन महाराज संपूर्ण महाराष्ट्र विख्यात महान सिद्ध पुरूष थे। गुरूजी कहते थे, श्री गजानन महाराज एक सिद्ध योगी थे।

एक बार पूज्य गुरूजी को आत्मयोग के बारे में कुछ जानने की इच्छा हुई। उस समय उन्होंने श्री गजानन महाराज जी का स्मरण किया। पूज्य गुरूजी कहते थे कि गजानन महाराज आये और बंद दरवाजे के बीचोंबीच, एक पैर इधर और दूसरा पैर उधर करके, बदन पर कोई वस्त्र नहीं था, आकर बैठ गये। गुरूजी का गजानन महाराज जी से योगमार्ग के गहन विषयों पर संवाद हुआ था। वैसे ही स्वयं गजानन महाराज जी ने पूज्य गुरूजी को याद किया था तो गुरूजी भी उनसे मिलने शेगांव चले गये थे। गुरूजी से गजानन महाराज की भेंट हुयी, उसके कई साल पहले गजानन महाराज समाधि ले चुके थे।

इन दोनों महान सिद्ध पुरूषों का एक दूसरे से मिलना, ये सामान्य लोगों जैसा आना जाना नहीं था। दोनों का दिव्य देह धारण कर एक दूसरे से मिलना जुलना हुआ था। यह घटना स्वयं कुछ शिष्यों ने पूज्य गुरूजी के मुखारविन्द से सुनी है। इत्यलम्।

एक मुमुक्षु

विदाई

अत्यंत दुख के साथ परिवारजनों को सूचित करना पड़ रहा है कि गत एक वर्ष के अन्दर हमारे तीन वरिष्ठ गुरू भाई/बहन का देहावसान हो गया है।

डॉ. आर.पी. पाण्डे एवं उनका परिवार सन् 1978–79 से गुरूजी से दीक्षा प्राप्तकर उनके सतत् सम्पर्क में रहा। डॉ. पाण्डे मेडिकल कालेज रीवा एवं रायपुर में वरिष्ठ प्राध्यापक रहे। कई गुरू पर्वों पर पूज्य गुरूजी की उपस्थिति में उन्होंने अपने अनुभव सुनाए थे। उनकी और उनकी धर्म पत्नि श्रीमती कांति पाण्डे की गुरू चरणों में सदैव अगाध श्रद्धा रही और उन्हें गुरूजी का स्नेह एवं आशीर्वाद सदैव मिलता रहा। डॉ. पाण्डे दिनांक.........................को एवं श्रीमती कांति पाण्डे दिनांक..................को रायपुर में दिवंगत हुईं। गुरूपरिवार की ओर से उन्हें श्रद्धांजलि एवं गुरूचरणों में बने रहने की प्रार्थना।

श्री दिलीप मराठे 1975 से पूज्य गुरूजी के सम्पर्क में आये और क्रमशः उनके पूरे वृहद परिवार ने गुरूजी से दीक्षा ली। मराठे जी ने गुरूजी के कई ऐसे रूपों का अनुभव किया जो आश्चर्यचकित करने वाले थे और जिनका उल्लेख पूर्व में उद्‌बोधन में हो चुका है। वर्ष 1997 से मराठेजी गुरूपर्व पर होने वाली पूरी भोजन व्यवस्था निजी तौर पर संभाल रहे थे। उनका समर्पण एवं जिम्मेदारी की भावना सराहनीय और अनुकरणीय दोनों है। दिनांक....................को भोपाल में, बिना अधिक कष्ट उठाये या किसी को दिये, उनका शरीर पंचतत्व में और आत्मा गुरूजी के पास पहुँच गई।

गुरूपरिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि।

प्रेरक संदेश

(महर्षि अरविंद आश्रम, पांडीचेरी की पत्रिका ''अग्निशिखा'' से संकलित)

- अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत ज्यादा सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो शुद्धि, प्रकाश और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो उन पर अपने विचार को बनाये रखना ज्यादा अच्छा है।
- तुम सम्पूर्ण त्याग की बात कर रहे हो, लेकिन शरीर को छोड़ना सम्पूर्ण त्याग नहीं है। सच्चा और पूर्ण त्याग है अहं का त्याग जो कहीं अधिक दुःसाध्य प्रयास है। अगर तुमने अपने अहं को न त्यागा हो तो शरीर छोड़ देने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।
- अपने–आपको भूल जाने का सबसे सरल मार्ग है, हमेशा ठीक चीज, ठीक तरीके से, ठीक समय पर करो।
- केवल तभी जब हम विक्षुब्ध न हों, हम हमेशा ठीक समय पर, ठीक तरह से चीज कर सकते हैं।
- हर रोज, हर क्षण, हम हमेशा ठीक चीज ठीक तरह से करने की अभीप्सा करेंगे।
- कृतज्ञताः— भगवान् से मिलने वाली कृपा की प्रेमपूर्ण मान्यता। भगवान् ने तुम्हारे लिए जो कुछ किया है और कर रहे हैं उसकी नम्र मान्यता।
- भगवान् के प्रति सहज आभार का भाव। भगवान् तुम्हारे लिए जो कुछ कर रहे हैं उसके लिए कम अयोग्य बनने हेतु यह भाव भरसक प्रयत्न करवाता है।
- तुम्हें यह जानना चाहिये कि चुपचाप रहना भगवान् के कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी है।
- साधना के लिए और कार्य करने के लिए, हमेशा चुपचाप काम करना ज्यादा अच्छा है।
- जब कभी, अपने जीवन में तुम्हें कठिनाई का सामना करना पड़े तो उसे प्रभु की कृपा के वरदान के रूप में लो और वह वही बन जायेगा।
- केवल भगवान् के बारे में सोचो और भगवान् तुम्हारे साथ होंगे।
- अपने–आपको दे दो–यही अपने–आपको पाने का उत्तम तरीका है।
- हमेशा अपना सन्तुलन और अचच्चल शान्ति बनाये रखो। बस इसी तरीके से तुम सच्चा ऐक्य पा सकते हो।
- ठीक तुम जब निर्दोष हो तो तुम्हें दुर्व्यवहार के बारे में एकदम उदासीन होना चाहिए क्योंकि तब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसके लिए तुम अपने–आपको दोष दो और अपने–आपको दिलासा देने के लिए तुम्हारे पास अपने अन्तःकरण की स्वीकृति होती है।

- तुम ध्यान किसे कहते हो?आंखें बन्द करके एकाग्र होने को? यह सच्ची चेतना को नीचे उतारने के तरीकों में से एक है। सच्ची चेतना के साथ एक हो जाना या उसके अवतरण को अनुभव करना ही एकमात्र महत्वपूर्ण चीज है और अगर वह रूढ़िगत तरीके के बिना आये, जैसा कि मेरे साथ हमेशा हुआ, तो बहुत ही अच्छा। ध्यान बस एक साधन या उपाय होता है। सच्ची गति तो तब होती है जब व्यक्ति चलते–फिरते, कार्य करते, बोलते हुए भी साधना करता रहे।
- शंका, अवसाद और अन्य ऐसी प्रवृत्तियों को दूर फेंक दो जो तुम्हारी सच्ची और उच्चतर प्रकृति का अंग नहीं हैं।
- तिरस्कार और अपमान से ऊपर होना तुम्हें सचमुच महान् बनाता है।
- आओ, हम जैसे प्रार्थना करते हैं उसी तरह काम करें, क्योंकि वस्तुतः काम भगवान् के प्रति शरीर की उत्तम प्रार्थना है।

प्रश्नोत्तर

प्र.– क्या धार्मिक प्रक्रियाएं, जैसे जप, धार्मिक पुस्तकें पढ़ना पूजा–पाठ इत्यादि करना, दिव्य–जीवन के लिए अभीप्सा के संकेत नहीं हैं?क्या वे परम सत्य को पाने में सहायक नहीं होते?

उ. – यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस भावना से वे किये जाते हैं। कोई व्यक्ति इन सब अभ्यासों को करते हुए भी अनाध्यात्मिक रह सकता है, बल्कि असुर बना रहा सकता है।

प्र.– पावन स्थलों की तीर्थयात्रा करने का और अनेक देवी–देवताओं की पूजा करेन का क्या कोई महत्व है?क्या भागवत सत्य को पाने या सिद्ध करने में इससे सहायता मिलती है?

उ.– सत्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सामान्य चेतनावालों के लिए धार्मिक अनुशासन है।

प्र.– संकीर्तन की–जिसका वैष्णवों में सामान्य रूप से प्रचलन है–क्या कोई आध्यात्मिक उपयोगिता है?

उ.– इसमें भक्ति बढ़ाने की शक्ति है, विशेष रूप से प्राणिक भागों में।

प्र.– साधारण लोग संकट के समय सहायता के लिए भागवत कृपा को पुकारते हैं, किन्तु बाद में भगवान् को भूल जाते हैं! क्या भागवत कृपा लोगों के जीवन में केवल इसी प्रकार कार्य करती है?

उ.– ऐसा केवल साधारण लोगों के साथ होता है, उनके साथ नहीं जो भगवान् को

खोजते हैं। भगवान् की विशिष्ट कृपा भगवान् के साधकों के लिए है–अन्य लोगों के लिए विश्व संकल्प हर व्यक्ति के कर्म के अनुसार कार्य करता है।

प्र.– लोगों में ऐसा विश्वास है कि यदि कोई, जिसने अपने पूरे जीवन में भगवान् को याद नहीं किया हो, पर केवल मृत्यु के समय भगवान् का नाम ले ले, तब वह अपने अगले जीवन में मुक्ति प्राप्त कर लेगा। क्या इस विश्वास में कुछ सच्चाई है?

उ.– नहीं, यह सब अन्धविश्वास है। यदि मुक्ति इतनी आसान होती तब हर आदमी जीवन–भर जो मर्जी करता और केवल अन्त में ''भगवान्'' को स्मरण करने की चालाकी से परम पद प्राप्त कर लेता। यह मूर्खतापूर्ण विचार है।

प्र.– पुराण भी कहते हैं कि मृत्योपरान्त के लोक में हजारों नरक हैं और इस जन्म में जो लोग दुष्ट कर्म करते हैं उन्हें मृत्यु के पश्चात् वहां जाना और रहना पड़ता है। क्या यह सच है?

उ.– यह अन्धविश्वास है। मृत्यु के बाद लोगों को कुछ प्राणिक तथा मानसिक लोकों से या कुछ मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जो उनकी प्रकृति तथा जीवन में किये गये कर्मो के परिणाम होते हैं। उसके बाद वे चैत्य–लोकों में चले जाते है और कुछ समय के बाद पृथ्वी पर पुनः जन्म लेते हैं।

प्र.– मैंने पढ़ा और सुना है कि व्यक्ति को 'अपने–आपको' भगवान् को दे देना चाहिए। मैं यह नहीं समझ पाता कि हमें 'अपने–आपको' कैसे देना चाहिये?

उ.– अपने विचार से, अपने विचारों को दो। अपने हृदय से, अपने भावों को दो। अपने शरीर से, अपना काम दो।

- शरीर के साथ यह बहुत विलक्षण बात है कि वह एक बार कोई बात सीख ले तो उसे भूलता नहीं। कोषाणु एक बार इसे सीख लें, यह आत्म–निवेदन, भगवान् के प्रति समर्पण, इस आत्म–समर्पण की आवश्यकता को सीख लें तो उसे हमेशा के लिए सीख लेते हैं, वह चीज फिर नहीं डगमगाती।
- मनुष्य अपने दुःख से, अपनी तुच्छता से, अपनी दुर्बलता से, अपने अज्ञान और अपनी सीमाओं से चिपका रहता है– इसी कारण वह बदल नहीं पाता।
- कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता – यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने–आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता।
- मैं तुमसे कहती हूं, दुःख–दर्द में मजा न लो और वह तुम्हें पूरी तरह से छोड़ देगा। दुःख–दर्द प्रगति के लिए अनिवार्य बिलकुल नहीं है। सबसे बड़ी प्रगति स्थित और

प्रसन्नचित समानता द्वारा की जाती है।

- विरोधी शक्तियों के आक्रमण अपरिहार्य हैं। तुम्हें इनको अपने मार्ग में परीक्षा के रूप में लेना ओर इन अग्नि–परीक्षाओं में से साहस के साथ गुजरना चाहिये। यह संघर्ष कठिन हो सकता है किन्तु जब तुम इसे पार करके बाहर निकलोगे तो देखोगे कि तुमने कुछ प्राप्त किया है, कि तुम एक कदम आगे बढ़े हो।

गुरू में विश्वास

आध्यात्मिक पथ–प्रदर्शक से पूरी तरह लाभ उठाने के लिए शिष्य को तीन शर्तों को निभाना होता है। पहलीः उसे किसी भी विरोधी या किसी भी दूसरे के प्रभाव की अधीनता स्वीकार किये बिना, केवल और पूरी तरह सिर्फ अपने गुरू को ही स्वीकारना चाहिये।दूसरीःअपने गुरू के द्वारा दिये गये संकेतों को उसे स्वीकारना चाहिये और अपनी आध्यात्मिक क्षमता के द्वारा सर्वोत्तम रूप से, पूरी श्रद्धा तथा लगन के साथ उनका अनुसारण करना चाहिये। तीसरीः उसे स्वयं को उद्घाटित करना होगा, ग्रहणशील बनना होगा, ताकि गुरू उसके अन्दर की आध्यात्मिक चेतना, ज्ञान, प्रकाश, शक्ति को विकसित कर सकें और वह उन गुणों के प्रति सचेतन बन कर उन्हें प्रकट कर सके। गुरू के द्वारा दिय गये ज्ञान के द्वारा साधक को अपनी चेतना तथा अपने अन्दर की दिव्य प्रकृति तथा सम्भावना को बढ़ाना होगा ताकि वह दिव्यता के चरण पखार सके।

गुरू साधक के लिए जो कर सकते हैं वह किसी तरीके, नियम या साधना पर नहीं बल्कि साधक की ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है साधक की चेतना की कुछ आन्तरिक अवस्थाएं या मनोवृत्तियां ग्रहणशीलता को बढ़ा सकती हैं– उदाहरण के लिए, गुरू के प्रति विनम्रता, भक्ति, आज्ञाकारिता, विश्वास, उनके प्रभाव के प्रति सकारात्मक ग्रहणशीलता। इनसे उलटी चीजें हैं– स्वच्छन्दता, छिद्रान्वेषी मनोवृत्ति, केवल सन्देहास्पद प्रश्नों की बौछार, यानी, उनके बताये मार्ग पर न चलना और गुरू के लिए यह अनिवार्य बना देना कि वे केवल अप्रत्यक्ष रूप में या परदे के पीछे से ही सहायता करें। लेकिन मुख्य चीज है कि साधक की चेतना में एक तरह का आन्तरिक उद्घाटन हो जाये और वह होता है या उसे विकसित किया जा सकता है उसे पाने के संकल्प तथा सही मनोभाव के अपनाने से ही। अगर वह हो तो गुरू से कुछ खींचने की आवश्यकता नहीं होती, बस चुपचाप उनसे ग्रहण करना होता है।

मानसिक दुश्चिन्ता और भागवत शक्ति में विश्वास

यह तो स्पष्ट ही है कि अपने–आपको और अपने जीवन को देखने की यह मानसिक क्षमता ही मनुष्य को असाधारण विशिष्टता प्रदान करती है। पशु सहज भाव से यन्त्रवत् जीता है, यदि वह ध्यान देता भी है कि वह कैसे जीता है तो वह काफी नगण्य और महतवहीन–से स्तर पर

होगा, अतः वह शान्ति से रहता है और कोई चिन्ता नहीं करता। यहां तक कि यदि कोई पशु किसी दुर्घटना या बीमारी से पीड़ित हो तो वह पीड़ा भी कम–से–कम हो जाती है क्योंकि वह इसे नहीं देखता, इसे अपनी चेतना में और भविष्य में प्रक्षिप्त नहीं करता, बीमारी या दुर्घटना के बारे में सोचता नहीं रहता।

मनुष्य के साथ शुरू हे गयी है यह चिरन्तन चिन्ता कि क्या होने वाला है और यही दुश्चिन्ता उसकी यातना का एकमात्र नहीं तो प्रधान कारण तो है ही। इस वस्तुपरक चेतना के साथ शुरू हुई दुश्चिन्ता, दर्दभरी कल्पनाएं, चिन्ता, यन्त्रणा, भावी अनिष्टों की आशंका जिनके फलस्वरूप अधिकतर मनुष्य–सबसे कम सचेतन नहीं बल्कि सर्वाधिक सचेतन मनुष्य–निरन्तर सन्ताप में जीते हैं मनुष्य इतना सचेतन है कि वह उदासीन नहीं रह सकता, पर इतना सचेतन भी नहीं है कि यह जान सके कि क्या होगा। सचमुच, भूल किये बिना यह कहा जा सकता है कि धरती के सारे प्राणियों में मनुष्य ही सर्वाधिक दयनीय है।

मनुष्य ऐसे रहने का आदी हो गया है, क्योंकि रोग की यह अवस्था उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है, पर यह है सचमुच दयनीय अवस्था। उच्चतर स्तर तक उठने की इस आध्यात्मिक शक्ति द्वारा और पशु की अचेतना को आध्यात्मिक परा–चेतना द्वारा स्थानान्तरित करके ही सत्ता में न सिर्फ जीवन के उद्देश्य को देखने की और प्रयास की प्राराकाष्ठा को पहले से जान लेने की क्षमता आती है बल्कि उच्चतर आध्यात्मिक शक्ति में स्पष्टदर्शी विश्वास भी आता है जिसके प्रति व्यक्ति पूर्ण आत्म–समर्पण कर सकता है, उसके भरोसे अपने–आपको छोड़ सकता है, अपने जीवन और भविष्य को उसे सौंप सकता है और इस तरह सब चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है।

वही सोचो जो तुम बनना चाहते हो
जो तुम नहीं होना चाहते उसे यथासम्भव भूल जाओ

हमारा भूतकाल चाहे जो भी रहा हो, हमने चाहे जो भी भूलें की हों, हम चाहे जितने अज्ञान में क्यों नह रह चुके हों, हम अपनी गभीरतम सत्ता में परम पवित्रता को धारण किये हुए हैं जो एक भव्य सिद्धि के रूप में रूपान्तरित हो सकती है।

बस, प्रधान बात है उसी के विषय में सोचना, उसी के ऊपर एकाग्र होना और अपनी समस्त कठिनाइयों और विघ्न–बाधाओं के विषय में भी संलग्न न रहना।

जो कुछ तुम बनना चाहते हो, बस, पर पूर्ण रूप से एकाग्र होओ और जो कुछ तुम नहीं होना चाहते उसे यथासम्भव समग्र रूप में भूल जाओ।

अतीत की भूलों को दोहराओं मत

''जब तक तुम अपने दोषों को दोहराते रहते हो, तब तक कुछ भी मिटाया नहीं जा सकता क्योंकि प्रत्येक क्षण तुम उन्हें नया कर देते हो। जब कोई व्यक्ति गलती करता है, चाहे वह गम्भीर

हो या मामूली, उसका परिणाम उसके जीवन में अवश्य होता है, यह एक ऐसा 'कर्म' है जिसका फल उसे भोगना ही पड़ता है, परन्तु भागवत कृपा, यदि तुम 'उसे' पुकारो, उसकी काट कर सकती है, पर उसके लिए यह आवश्यक है कि त्रुटि को दोहराया न जाये। यह मत सोचो कि तुम वह–की–वही मूर्खताएं अनिश्चित काल तक करते रहोगे और 'कृपा' उनके परिणामों को अनिश्चित काल तक रद्द करती रहेगी। ऐसा नही होता। अतीत को पूरी तरह साफ किया जा सकता और पोंछा जा सकता है, यहां तक कि उसका भविष्य पर कोई प्रभाव ही न रहे, पर शर्त यही है कि उसे तुम स्थायी वर्तमान न बना लो, यह आवश्यक है कि तुम स्वयं अपने अन्दर के गलत स्पन्दनों को रोको, उन्हीं स्पन्दनों को अनिश्चित काल तक फिर–फिर पैदा न करते रहो।''

जब तुम योग–मार्ग पर आओ तो तुम्हें अपने मन के सभी महलों और प्राण की मचानों के ढहाये जाने के लिए तैयार रहना चाहिये। तुम्हें श्रद्धा के सिवाय किसी भी सहारे के बिना हवा में अधर लटकने के लिए तैयार रहना चाहिये। तुम्हें अपने भूतकाल के व्यक्तित्व को और उसकी आसक्तियों को एकदम भूल जाना होगा, उसे अपनी चेतना में से निकाल बाहर करना होगा तथा एक ऐसा नया जन्म लोना होगाजो समस्त बन्धनों से मुक्त हो। तुम क्या थे इसकी चिन्ता न करो, जो बनने की अभीप्सा करते हो केवल उसी का चिन्तन करो, जिस सिद्धि को प्राप्त करनाचाहते हो केवल उसी में तन्मय हो जाओ। मृत भूतकाल की ओर से मुंह मोड़ लो और सीधे भविष्य की ओर देखो। तुम्हारा धर्म, देश, परिवार वही है, वे हैं स्वयं ''भगवान''

मां, मेरा जीवन शुष्क है। वह हमेशा ऐसा ही रहा है, मेरे जीवन की शुष्कता निरन्तर बढ़ती रहती है।

यह किन्हीं बाहरी परिस्थितियों पर नहीं, तुम्हारी भीतरी स्थिति पर निर्भर करता है। यह इसलिए होता है क्योंकि तुम अपने मन के बहुत ही छिछले स्तर पर रहते हो। तुम्हें अपनी चेतना में कुछ गहराई पाने की कोशिश करनी चाहिये और फिर वहीं निवास करना चाहिये।

निश्चय ही, उदास और दुःखी होकर तुम भगवान् के पास नहीं पहुंचते। तुम्हें हमेशा अपने हृदय में दृढ़ श्रद्धा और विश्वास तथा मस्तिष्क में विजय की निश्चिति रखनी चाहिये। मेरे और तुम्हारे बीच जो छायाएं आती ओर मुझे तुम्हारी दृष्टि से छिपाती हैं उन्हें निकाल बाहर करो। निश्चिति के शुद्ध प्रकाश में ही तुम मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकते हो।

तुम जितने अधिक उदास होओगे और रोना–धोना करोगे उतने ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् उदास नहीं है और भगवान् को पाने के लिए तुम्हें समस्त उदासी और

समस्त भावुक दुर्बलता को अपने से बहुत दूर फेंक देना होगा।

मनीषा पंचकम्

(माँ आनंदमयी आश्रम की पत्रिका मातृवाणी से उद्‌घृत)

ब्रह्मैवाहमिदम् जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम्।
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरूरित्येषा मनीषा मम।।

मैं ब्रह्म हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ। यही नित्य–शुद्ध ब्रह्म जगत रूप से भास रहा है। त्रिगुणात्मिका (सत्व, रज और तम) अविद्या माया से सम्मोहित मैं ही इस संसार को सच मान बैठा हूँ। जिसे इस सत्य का दृढ़ निश्चय हो यगा है कि यह वास्तव में, नित्य, शुद्ध–बुद्ध आनन्द रूप परब्रह्म का ही विस्तार है, वो मेरे लिए गुरू है, फिर चाहे वो शूद्र हो अथवा ब्राह्मण।

यह श्लोक विस्तार है उपनिषद् के महावाक्य, अहम् ब्रह्मस्मि का! यह बोध हो जाना कि अहम् और इदं (जोकि द्वैतभाव, जीवभाव का मूल है) अनेकानेक जन्मों की साधना तथा ईश्वर–कृपा का श्रेष्ठतम फल है, सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। तो, श्री शंकर जी यहाँ चाण्डाल रूप में आये भगवान शंकर से कह रहे हैं कि गाढ़ सुषुप्ति के बाद जब हम सुबह उठते हैं तो अहम् ओर इदं रूपी द्वैत–जगत भी फिर से साथ ही प्रस्तुत हो जाता है। सुषुप्ति में सब एक ही हो गया था किन्तु अज्ञानवश हम उस एकत्व को जान नहीं पाते। और जिसने इसे जान लिया उसकी तो मानो सहज समाधि लग गई। अब वह जाग्रत अवस्था में भी अहम्–इदं का भेद न कर के अहम्–अहम् रूप से सारे जगत को ब्रह्म रूप देखता है, जिस वस्तु–व्यक्तियों के, सत्व–रज–तम तीन गुणों द्वारा प्रक्षेपित, कल्पित रंगमंच को अज्ञानी जन सत्य समझ कर सुखी–दुखी होते रहते हैं ओर अनमोल मनुष्य जीवन गँवा कर चले जाते हैं। तो, र्व ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्म है, सर्वदा ब्रह्म है, बस ब्रह्म ही ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं है– इसमें जिसकी दृढ़ स्थिति हो गई है, वह निर्मल आनन्द में रमने वाला महात्मा जन्मना ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल, मेरे लिए गुरू है, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं, निश्चित्य वाचा गुरोः, नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशतानिर्व्याजशान्तात्मना।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता
संविन्मये पावके प्रारब्धाय समर्पितं
स्ववपुरित्येषा मनीषा मम।।

गुरू के शिक्षा, उपदेश द्वारा इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् कि जगत की प्रत्येक वस्तु नित्य–नश्वर है, मरणधर्मा व परिवर्तनशील है, जो शिष्य अथवा साधक निर्मल व शांत मन के साथ निरन्तर ब्रह्म का चिंतन–मनन करता है तथा जिसने अपेन पूर्वकृत व आगामी कर्मों को

ज्ञानाग्नि में फूंक डाला है, अब वह अपने वर्तमान देह को प्रारब्ध–कर्म के क्षय हेतु अर्पित कर देता है, ऐसा मैं मानता हूँ।

कर्म को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा गया है–

1) संचित कर्म, पूर्व जन्मों में किये कर्मों के फल का भण्डार,
2) प्रारब्ध – कर्म, अर्थात वे पूर्वकृत कर्म जिनके फलस्वरूप हमें यह देह मिला, और
3) आगामी कर्म, यानि इस जीवनकाल में किये गए कर्मों के फल।

आत्मबोध होने के बाद, कोई कर्म फलित नहीं होता, पाप या पण्य नहीं बनता। आत्मबोध हो जाने पर भी प्रारब्ध–कर्म का नाश नहीं होता, उसका भोग तो इस देह को करना ही पड़ता है ओर ऐसा जीवन्मुक्त महात्मा प्रारब्ध–कर्म के क्षीण होते ही देह–त्याग के बाद विदेहमुक्त हो जाता है। ऊपरलिखित श्लोक का यही सार है कि ज्ञानी पुरूष प्रारब्ध–कर्म के सामने स्वयं को समर्पित कर देता है। जैसा आये, उसे साक्षी भाव से स्वीकार करता जाता है। दुःख आये तो शोक नहीं करता और सुख की कामना नहीं करता।

या तिर्यङ्.नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्मते
यद्भासा हृदयाक्षदेहाविषया भान्ति स्वतीोचेतनाः।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्पूर्तिम् सदा भावयन्
योगी निर्वृत्तमानसो हि गुरूरित्येषा मनीषा मम।।

चाहे पशु योनि हो, मनुष्य योनि अथवा देव योनि – हर प्राणी में यह शुद्ध ब्रह्म अहम् के रूप में स्पष्ट भास रहा है। इसी शुद्ध आत्मा में प्रतिबिम्बित हो कर अचेतन मन, इन्द्रियाँ और देह सचेतन मालूम होती हैं। वस्तु–व्यक्तियों का यह बाहरी जगत भी आत्मा के कारण ही भासता है। किन्तु इन्हीं प्रकाशित मन, इन्द्रियों और देह से यह आत्मा ठीक उसी तरह छिपा रहता है जैसे सूर्य बादलों से आच्छादित हो कर छिप जाता है। वृत्तियों से रहित, शांत मन वाला योगी, जो सदा इसी आत्मा में रत है, वह मेरा गुरू है। ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।

आत्मा अथवा ब्रह्म ही इन मन–बुद्धि, इन्द्रियों आदि को अनुप्राणित करता है, कर्म–योग्य बनाता है, जो वस्तुतः जड़ हैं। देह, मन–बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि जो शुद्ध चैतन्य के कारण ही चेतन प्रतीत होती हैं, वो हमें जगत के काम काज में इस तरह उलझा देती हैं कि सारे प्रपंच का अधिष्ठान ही हमारी दृष्टि से ओझल कर देती हैं। तो, इस आत्मा, अपने असली आपे के दर्शन करने हों तो क्या करना होगा? कुछ ज्यादा नहीं, इन देह–मन–इंद्रियों को बाहर से खींच कर तनिक शांत हो कर बैठ जाएँऔर भीतर झांकें। जैसा कि रमण गीता में भगवान रमण महर्षि भी कहते हैं–

हृदय कुहरमध्ये केवलं ब्रह्ममात्रम् अहम् अहम् इति साक्षादात्मरूपेण भाति।

प्रत्येक प्राणी के हृदय की गुहा में, यह ब्रह्म छिपा है और सदा, साक्षात् 'अहम', 'अहम' रूप से प्रकाशित होता रहता है। तो फिर, हमें यह दिखाई, सुनाई क्यों नहीं देता, कैसे देगा?तो कहते हैं–

हृदि विश स्वं चिन्वता मज्जता वा
पवन चलन रोधाद् आत्मनिष्ठो भवत्वम्।।

हृदय (अंदर) की ओर मुडो, अंतर्मुखी हो जाओ और मन द्वारा विचार करो या हृदय में गोता लगाओ

या साँसां का नियमन – प्राणायाम आदि कर के (उनका इशारा कदाचित कुम्भक प्राणायाम आदि की ओर था।) यदि आत्मतत्व को जानना है तो येन–केन–प्रकारेण अंतर्मुखी तो होना ही पड़ेगा।

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृताः
यच्चित्ते नितरां प्रशानतकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृत्ः।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मवित्
यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम।।

अपनी आत्मा जो कि ब्रह्म ही है, परम आनन्द का नित्य सागर है। उस आनन्द का एक अंश–मात्र इन्द्रादि देवताओं को तृप्त करने के लिए बहुत है। एकदम शांत चित्त के ाथ आत्म–चिन्तन करने से, महात्मा कृतकृत्यता का अनुभव करता है। आत्म–तत्व के साथ तादात्म्य कर, यह महात्मा न केवल ब्रह्मविद् होता है अपितु स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। ऐसा मनुष्य कोई भी हो, उसके चरण स्वयं इन्द्र द्वारा पूज्य हैं, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।

बृहदारण्य तथा तैत्तिरीय उपनिषद् कहते हैं कि सभी प्राणियों द्वारा अनुभू आनन्द, ब्रह्मानन्द काा एक अंश–मात्र है। ब्रह्म को जान लेने का अर्थ किसी दूसरे–तीसरे को जान लेने जैसा नहीं बल्कि स्वयं मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं यह देह–मन–बुद्धि का संघात नहीं। मुण्डक उपनिषद् भी यही घोष करता है कि इसका बोध कर लेने वाला मनुष्य स्वयं ब्रह्म ही जानिए। ध्यान देने योग्य बात है कि यह किसी नई अवस्था की प्राप्ति का नाम नहीं है। असल में हम सभी ब्रह्म हैं, चाहे हम अपने आप को सीमित, बद्ध जीव ही क्यों न मानते हों। देह–मन–बुद्धि के साथ हुए गलत तादात्म्य को दूर कर, अपने अनन्त ब्रह्मत्व को जान लेना – इसी का नाम मोक्ष है, दूसरा कुछ नहीं यह बोध हो जाने पर कि मैं देह–मन–बुद्धि संघात नहीं बल्कि ब्रह्म हूँ, यह निश्चय हो जाता है कि मैं तो सदा ब्रह्म ही था, अब तो केवल मेरी मिथ्या भ्रान्ति का नाश हुआ है, मैं कुछ और, कुछ नया नहीं बन गया। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि वास्तव में, कोई बन्धन है नहीं अपितु जीव ने यह मान रखा है।

जड़– चेतनहि ग्रंथि परि गई जदपि मृषा छूटत कठिनई

जड़ और चेतन में जिस ग्रंथि की हमने मिथ्या कल्पना कर ली है, वो असल में है ही नहीं। हो तो उस गाँठ को सुलझाएं?इस गाँठ को कोई अस्तित्व हो तो हम कोई तरीका भी निकालें इसे खोलने का। यह गाँठ तो कल्पित है, जैसे किसी गाय को भ्रान्ति हो जाये कि मैं खूंटे से बंधी हूँ और खुली होने पर भी आगे ही न बढे। तो, जड़ वस्तु मिथ्या है, केवल प्रतीत हो रही है, मरीचिका की तरह! सतवस्तु सदा एकमेव थी, है और रहेगी। तो किसको, कैसा बन्धन और कैसा मोक्ष? हमारी गलत सोच, हमारा अज्ञान ही बंधन है और श्रवण–मनन–निदिध्यासन द्वारा हम अभी, यहीं जीवनमुक्ति का परम आनन्द पा सकते हैं। मुक्ति मृत्यु–उपरान्त प्राप्त होने वाली वस्तु हीं बल्कि जीते जी पाने, अनुभूत करने जैसी वस्तु है और जो कोई विरला इसे पा ले, वह मेरे लिए गुरू–समान है।

अध्यक्ष : 51319
कोषाध्यक्ष : 51007 (O)
: 51327 (R)

ॐ श्री वासुदेव गुरुपरिवार आत्मोत्थान न्यास

बड़ा बाजार, मुंगेली 495334, जिला -बिलासपुर (म.प्र.)

आय– व्यय खातों का सामायोजन 01.04.2015 से 31.03.2016

क्रमांक ....

दिनांक ....

16,65,918.00 श्री आय खाते जमा

12,15,538.00 श्री नव निर्माण खाते जमा
2,21,635.00 श्री ब्याज खाते जमा
1,61,631.00 श्री भोजन शाला खातें जमा
40,073.00 श्री कृषि उद्यान खातें जमा
17,501.00 श्री मेंटनेस खातें जमा
7,739.00 श्री अखण्ड ज्योत खाते जमा
1,001.00 श्री गुरू दक्षिणा खाते जमा
800.00 श्री पुस्तक बिकी खाते जमा

16,65,918.00

4,13,985.00 श्री व्यय खाते लेखे

91,461.00 श्री गुरू पुर्निमा महोत्सव खर्च खाते
83,000.00 श्री सेलरी खर्च खातें
62,000.00 श्री अध्यक्ष को दी गई खर्च राशि
सत्र 2014से 2015 31000/–
एवं2015 से 2016 31000/–
60,809.00 श्री कृषि उद्यान खर्च खातें
40,773.00 श्री आश्रम,भवन एवं मेंटनेस खर्च खाते
32,410.00 श्री बिजली बिल खर्च खातें
23,140.00 श्री लेवर खर्च खातें
17,487.00 श्री महानिर्वाण दिवस खर्च खातें
2,000.00 श्री पोस्टेज खर्च खातें
900.00 श्री मोबाईल रिचार्ज खर्च खातें
5.00 श्री बैंक कमीशन खर्च खातें

4,13,985.00 कुल व्यय खातों की जोड़

12,51,933.00 कुल साल भर का खर्च काटकर
बचत आय पुंजी खाते में जमा किया.
16,65,918.00

वास्ते,ॐ श्री वासुदेव गुरुपरिवार आत्मोत्थान न्यास

कोषाध्यक्ष सचिव अध्यक्ष

नोटः– 1. कुल आय खातों से प्राप्त राशि	16,65,918.00
2. कुल व्यय खातों मे व्यय राशि	– 4,13,985.00
बचत शुध्द आय खाता	12,51,933.00
गुप्त भंडार खातें कि राशि को पुंजी खातें में जमा किया गया	3,48,140.00
श्री वाटर फिल्टर खाते कि राशि को पुंजी खातें में जमा किया	15,800.00
श्री न्यु गैस कनैशन खाते कि राशि का पुंजी खातें में जमा किया	3000.00
(कुल पुंजी खाते जमा राशि)	16,18,873.00

अध्यक्ष : 51319
कोषाध्यक्ष : 51007 (O)
: 51327 (R)

ॐ श्री वासुदेव गुरूपरिवार आत्मोत्थान न्यास

बड़ा बाजार, मुंगेली 495334, जिला -बिलासपुर (म.प्र.)

क्रमांक .... दिनांक ....

आंकड़ा

01/04/2015 से 31/03/2016 तक

40,90,967.25 श्री पुंजी खाते जमा
92,101.00 श्री भूमि कंय खातें जमा
14,600.00 श्री आशुतोष सिंह खाते जमा
14040.00 श्री नन्दकिशोर सोलंकी खाते जमा
14000.00 श्री अमित अनंत खाते जमा
5000.00 श्री विवेक शुक्ला सेलरी खाते जमा सत्र 2015 से 2016
2,693.17 श्री विवेक शुक्ला सेलरी खाते जमा सत्र 2014 से 2015

42,33,401,42

1,21,415.42 श्री पंजाब नैशनल बैंक मुंगेली एकाउंट नं. 252600010010853 खातें
40,574.00 श्री भारतीय स्टेंट बैंक मुंगेली एकाउंट नं. 31505295999 खातें
22,44,764.00 श्री एफ.डी.आर. खातें
17,13,380.00 श्री मंदिर भवन निर्माण मद खातें
50,227.00 श्री दरी गद्दा रजाई खातें
39,872.00 श्री फर्नीचर खातें
9,000.00 श्री इनवर्टर खातें
6,930.00 श्री बर्तन खरीदी खातें
2,722.00 श्री मंदिर घण्टी खातें
2,359.00 श्री ईलेक्ट्रीक पम्प खातें
500.00 श्री चंदा रजक रीवां खातें

42,31,743.42
1,658.00 श्री पोते बाकी 31.3.2016
42,33,401.42

वास्ते, ॐ श्री वासुदेव गुरूपरिवार आत्मोत्थान न्यास

कोषाध्यक्ष सचिव अध्यक्ष